॥ श्रीहरिः ॥ 571

श्रीकृष्णालीलाका चिन्तन

विशिष्ट संस्करण

गीताप्रेस, गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

विषय-सूची

क्रमाङ्क	विषय	पृष्ठ-संख्या
१—	जन्म-महोत्सव	१
२—	मथुरासे श्रीवसुदेवका संदेश लेकर दूतका आगमन और नन्दजीके द्वारा उसका सत्कार	९
३—	षष्ठी देवीका पूजन	१३
४—	व्रजेशकी मथुरा-यात्रा	१७
५—	पूतना-मोक्ष तथा पूतनाके अतीत जन्मकी कथा	१८
६—	कंसके भेजे हुए श्रीधर नामक ब्राह्मणका व्रजमें आगमन और व्रजरानीके द्वारा उसका सत्कार	२७
७—	काकासुरका पराभव, औत्थानिक (करवट बदलनेका) उत्सव, जन्म-नक्षत्रका उत्सव, शकटासुर-उद्धार	३२
८—	श्रीकृष्णका बलरामजी तथा गोप-बालकोंके साथ मिलन-महोत्सव, श्रीगर्गाचार्यके द्वारा दोनों कुमारोंका नामकरण-संस्कार	४०
९—	शिशु श्रीकृष्णका अन्नप्राशन-महोत्सव, कुबेरके द्वारा गोकुलमें स्वर्णवृष्टि	४८
१०—	व्रजमें क्रमशः छहों ऋतुओंका आगमन और श्रीकृष्णकी वर्षगाँठ	५३
११—	तृणावर्त-उद्धार	५८
१२—	श्रीकृष्णकी मनोहर बाललीलाएँ	६४
१३—	माँ यशोदाका शिशु श्रीकृष्णके मुखमें विश्वब्रह्माण्डको देखना तथा श्रीरामकथाको सुनकर श्रीकृष्णमें श्रीरामका आवेश	७०
१४—	श्रीकृष्णकी मृद्भक्षण-लीला तथा माँ यशोदाका पुनः उनके मुखमें असंख्य विश्वब्रह्माण्डोंको देखना	७५
१५—	फल-विक्रयिणीपर कृपा	८३
१६—	दुर्वासाका मोह-भङ्ग	८९
१७—	कण्व ब्राह्मणपर अद्भुत कृपा	९४
१८—	व्रजेश्वरको श्रीकृष्णके मुखमें अखिल विश्वका दर्शन	१०१
१९—	हाऊ-लीला	१०८
२०—	मणिस्तम्भ-लीला (प्रथम नवनीत-हरण-लीला)	११६
२१—	द्वितीय माखन-चोरी-लीला	१२१
२२—	माखन-चोरीके व्याजसे श्रीकृष्णका सम्पूर्ण व्रजमें रस-सरिता बहाना	१२६
२३—	उपालम्भ-लीला	१३२
२४—	श्रीकृष्णकी दूसरी वर्षगाँठ, श्रीकृष्णके द्वारा मोतियोंकी खेती	१४१
२५—	ग्वालिनोंके उपालम्भपर माँ यशोदाकी चिन्ता और उलाहना देनेवालीपर खीझ	१४६
२६—	स्वयं यशोदाके द्वारा दधिमन्थन तथा श्रीकृष्णका जननीको रोककर उनका स्तन्य-पान करना	१५१
२७—	स्तन्यपान-रत श्रीकृष्णको गोदसे उतारकर माताका चूल्हेपर रखे हुए दूधको सँभालना और श्रीकृष्णका रुष्ट होकर दधिभाण्डको फोड़ देना तथा नवनीतागारमें प्रविष्ट होकर कमोरीमें रखे हुए नवनीतको निकाल-निकालकर बंदरोंको लुटाना; माताको देखकर श्रीकृष्णका भागना और यशोदाका उन्हें पकड़कर बाँधनेकी चेष्टा करना	१५६
२८—	श्रीकृष्णकी ऊखल-बन्धन-लीला	१६३
२९—	ऊखलसे बँधे हुए दामोदरका यमलार्जुन बने हुए कुबेरपुत्रोंपर कृपापूर्ण दृष्टिपात	१७१
३०—	यमलार्जुनके अतीत जन्मकी कथा; यमलार्जुन-उद्धार	१७४
३१—	कुबेर-पुत्रोंको स्वरूप-प्राप्ति तथा उनके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन तथा प्रार्थना; श्रीकृष्णकी उनके प्रति करुणापूर्ण आश्वासन-वाणी	१७९
३२—	वृक्षोंके टूट जानेपर भी श्रीकृष्णको अक्षत पाकर माता-पिताका उल्लास	१८३
३३—	क्रीड़ा-निमग्न बलराम-श्रीकृष्णको माताका	

क्रमाङ्क	विषय	पृष्ठ-संख्या
	यमुनातटसे बुलाकर लाना और स्नानादिके अनन्तर उनका नन्दरायजीकी गोदमें बैठकर भोजन करना; आँखमिचौनी-लीला	१८८
३४—	उपनन्दजीके प्रस्तावपर, आये दिन व्रजमें होनेवाले उपद्रवोंके भयसे सम्पूर्ण व्रजवासियोंकी गोकुल छोड़कर यमुनाजीके उस पार वृन्दावन जानेकी तैयारी	१९३
३५—	वृन्दावन-यात्राका वर्णन.....	१९८
३६—	यात्राके अन्तमें यात्रियोंका यमुना-तटपर रात्रि-विश्राम तथा रात्रिके शेष होनेपर यमुना-पार जानेका उपक्रम	२०५
३७—	व्रजवासियोंके यमुना-पार जानेका वर्णन; श्रीकृष्णका वृन्दावनकी शोभाका निरीक्षण करके प्रफुल्लित होना; शकटोंद्वारा आवास-निर्माण	२१०
३८—	रात्रिमें समस्त व्रजवासियोंके निद्रामग्न हो जानेपर अमरशिल्पी विश्वकर्माका तीन कोटि शिल्पविशेषज्ञों तथा अगणित यक्ष-समूहोंके साथ वृन्दावनमें पदार्पण तथा रात्रि शेष होनेसे पूर्व वहाँकी चिन्मय भूमिपर नवीन व्रजेन्द्र-नगरी, वृषभानुपुर तथा रासस्थली आदिका आविर्भाव; पुरीकी अप्रतिम शोभा तथा दिव्यताका वर्णन	२१५
३९—	नन्दनन्दनकी भुवनमोहिनी वंशीध्वनिका विश्वब्रह्माण्डमें विस्तार तथा उसके द्वारा वृन्दावनमें रससरिताका प्रवाहित होना; उसके कारण स्थावर-जंगमोंका स्वभाव-वैपरीत्य	२२४
४०—	श्रीनन्दनन्दनका वत्सचारण-महोत्सव तथा अन्यान्य गोपबालकोंके साथ बलराम-श्यामका वत्सचारणके लिये पहली बार वनकी ओर प्रस्थान तथा वनमें सबके साथ छाकें आरोगना	२२८
४१—	दैनिक वत्सचारण-लीलाका वर्णन	२३५
४२—	वत्सासुर-उद्धार	२४०
४३—	वकासुरका उद्धार; वकासुरके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	२४५
४४—	वकासुर-संहारकी कथा सुनकर यशोदाके मनमें चिन्ता; व्रजमें सर्वत्र श्रीकृष्णलीलागान	२५२
४५—	वनमें बलराम-श्रीकृष्णकी गोप-बालकोंके साथ निलायन-क्रीड़ा— लुकाछिपीका खेल; व्योमासुरका वध	२५७
४६—	वन-भोजन-लीलाका उपक्रम, वयस्य गोप-बालकोंके द्वारा श्रीकृष्णका शृङ्गार तथा श्रीकृष्णके साथ उनकी यथेच्छ क्रीड़ा ...	२६१
४७—	अघासुरका उद्धार	२६७
४८—	अघासुरके पूर्वजन्मका वृत्तान्त; अघासुरके वधपर देववर्गके द्वारा श्रीकृष्णका अभिनन्दन.....	२७४
४९—	गोप-बालकोंके साथ श्रीकृष्णका वन-भोजन तथा भोजनके साथ-साथ मधुराति-मधुर कौतुक एवं कौशलपूर्ण विनोद	२७८
५०—	ब्रह्माजीके द्वारा पहले गोवत्सोंका अपहरण और श्रीकृष्णके उन्हें ढूँढ़ने निकलनेपर गोपबालकोंका भी अपसारण; श्रीकृष्णकी उन्हें ढूँढ़ निकालनेमें असमर्थता तथा अन्तमें सर्वज्ञताशक्तिद्वारा सब कुछ जान लेना ...	२८४
५१—	ब्रह्माजीकी मनोरथ-सिद्धिके लिये तथा व्रजकी समस्त माताओं तथा वात्सल्यमती गौओंको माँ यशोदाका-सा वात्सल्य-रस प्रदान करनेके लिये श्रीकृष्णका असंख्य गोपबालकों एवं गोवत्सोंके रूपमें उनकी सम्पूर्ण सामग्रीके साथ प्रकट होना तथा उन्हीं अपने स्वरूपभूत बालकों एवं बछड़ोंके साथ व्रजमें प्रवेश.....	२९०
५२—	व्रजके सम्पूर्ण गोपबालक एवं गोवत्स बने हुए श्रीकृष्णका यह खेल प्रायः एक वर्षतक निर्बाध चलता है, किसीको इस रहस्यका पता नहीं लगता। एक वर्षमें पाँच-छः दिन कम रहनेपर एक दिन बलरामजीको वनमें गायोंका अपने पहलेके बछड़ोंपर तथा	

क्रमाङ्क	विषय	पृष्ठ-संख्या
	गोपोंका अपने बालकोंपर असीम और अदम्य स्नेह देखकर आश्चर्य होता है और तब श्रीकृष्ण उनके सामने इस रहस्यका उद्घाटन करते हैं	२९७
५३—	ब्रह्माजीका अपने ही लोकमें पराभव और वहाँसे लौटकर श्रीकृष्णको वनमें पूर्ववत् उन्हीं गोपबालकों एवं गोवत्सोंके साथ, जिन्हें वे चुराकर ले गये थे, खेलते देखकर आश्चर्यचकित होना; फिर उनका सम्पूर्ण गोवत्सों एवं गोपबालकोंको दिव्य चतुर्भुजरूपमें देखना और मूर्च्छित होकर अपने वाहन हंसकी पीठपर लुढ़क पड़ना	३०६
५४—	चेतना लौटनेपर ब्रह्माजीका अपने वाहनसे उतरकर श्रीकृष्णके पादपद्मोंपर लुट पड़ना और उनका स्तवन करने लगना	३१३
५५—	ब्रह्माजीद्वारा की गयी स्तुति एवं प्रार्थना ..	३१९
५६—	ब्रह्माजीके द्वारा व्रजवासियोंके भाग्यकी सराहना	३४७
५७—	ब्रह्माजीका श्रीकृष्णसे विदा माँगकर सत्यलोकमें लौट जाना; पुनः वन-भोजन; योगमायाके द्वारा गोपबालकों एवं गोवत्सोंका व्रजमें प्रत्यावर्तन, उनके सामने उसी दृश्यका पुनः प्रकट होना, जिसे छोड़कर श्रीकृष्ण बछड़ोंको ढूँढ़ने निकले थे, तथा उन्हें ऐसा प्रतीत होना मानो श्रीकृष्ण अभी-अभी गये हैं	३५४
५८—	एक वर्षके व्यवधानके बाद श्रीकृष्णका पुनः ब्रह्माजीके द्वारा अपहृत गोपबालकों एवं गोवत्सोंके साथ व्रजमें लौटना और बालकोंका अपनी माताओंसे अघासुरके वधका वृत्तान्त इस रूपमें कहना मानो वह घटना उसी दिन घटी हो; व्रजगोपियों तथा व्रजकी गायोंके स्नेहका अपने बालकों एवं बछड़ोंसे हटकर पुनः पूर्ववत् श्रीकृष्णमें ही केन्द्रित हो जाना.....	३६१
५९—	श्रीकृष्णका प्रथम गोचारण-महोत्सव	३६७
६०—	श्रीकृष्णके द्वारा बलरामजीके प्रति वृन्दावनकी शोभाका वर्णन	३७६
६१—	श्रीकृष्णका वृन्दावन-विहार.....	३८२
६२—	वनमें गौओंका भटककर कालिय-ह्रद (कालीदह)-के समीप पहुँचना और प्यासी होनेके कारण वहाँका विषैला जल पीकर प्राणशून्य हो गिर पड़ना, गोप-बालकोंका भी उसी प्रकार निश्चेष्ट होकर गिर पड़ना; श्रीकृष्णका वहाँ आकर उन सबको तथा गौओंको करुणापूर्ण दृष्टिमात्रसे पुनर्जीवित कर देना और सबसे गले लगकर एक साथ मिलना	३९५
६३—	श्रीकृष्णका कालियनागपर शासन करनेके उद्देश्यसे कालियह्रदके तटपर अवस्थित कदम्बके वृक्षपर चढ़कर वहाँसे कालियह्रदमें कूद पड़ना	४००
६४—	श्रीकृष्णका कालियके शयनागारमें प्रवेश और नागवधुओंसे उसे जगानेकी प्रेरणा करना; नागपत्नियोंका बालकृष्णके लिये भयभीत होना और उन्हें हटानेकी चेष्टा करना.....	४०५
६५—	श्रीकृष्णके द्वारा कालियह्रदके नीचेतक उद्वेलित होनेपर कालियका क्रुद्ध होकर बाहर निकलना, श्रीकृष्णको बार-बार कई अङ्गोंमें डसना और अन्तमें उनके शरीरको सब ओरसे वेष्टित कर लेना; यह देखकर तटपर खड़े हुए गोपों और गोपबालकोंका मूर्च्छित होकर गिर पड़ना	४१०
६६—	अपशकुन देखकर नन्द-यशोदा एवं बलरामजीका तथा अन्य व्रजवासियोंका नन्दनन्दनके लिये चिन्तित हो एक साथ दौड़ पड़ना और श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके सहारे कालीदहपर जा पहुँचना और वहाँका हृदयविदारक दृश्य देखकर मूर्च्छित हो गिर पड़ना	४१४

॥श्रीहरिः॥

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन

जन्म-महोत्सव

व्रजेन्द्रगेहिनी यशोदा नेत्र निमीलित किये मणिमय दीवालके सहारे चुपचाप निस्पन्द बैठी हैं। श्रीरोहिणीजीकी आँखें भी बंद हैं। अन्य समस्त परिचारिकाएँ भी निद्राभिभूत होकर बाह्यज्ञानशून्य हो रही हैं। इसलिये दिव्य नराकृति परब्रह्मको सूतिकागारमें पदार्पण करते तो किसीने नहीं देखा, पर उनके आते ही समस्त सूतिकागार एक अभिनव चिन्मय रससे प्लावित हो गया, वहाँका अणु-अणु उस रसमें निमग्न हो गया। व्रजमहिषीकी लीलाप्रेरित प्रसव-वेदनाजन्य मूर्च्छा, रोहिणी तथा परिचारिकाओंकी योगमायाप्रेरित तन्द्रा एवं निद्रा भी उस रसके स्पर्शसे चिन्मय भावसमाधि बन गयी।

यशोदाके क्रोडसे संलग्न सच्चिदानन्दकन्द श्रीहरि शिशुरूपमें अवस्थित हैं। कदाचित् अनन्त सौभाग्यवश कोई कवि दिव्यातिदिव्य नेत्र पाकर उस क्षणकी शोभाका अनुभव करता, अनुभवको वाणीसे व्यक्त करनेकी शक्ति पाता, तो वह इतना ही कह सकता—मानो चिदानन्द-सुधा-रस-सरोवरमें अभी-अभी एक अद्भुत अपूर्व नवीनतम नीलपद्म प्रस्फुटित हुआ हो—वह अभूतपूर्व अरविन्द, जिसका आघ्राण मधुगन्धलुब्ध भ्रमरोंने आजतक नहीं पाया था, जिसके सौरभका अपहरण करके कृतार्थ होनेका अवसर अनिलको आजतक नहीं प्राप्त हुआ था, जल जिस अरविन्दको उत्पन्न ही न कर सका था, जलके वक्षःस्थलपर खेलनेवाली चञ्चल तरङ्गें जिस पद्मको प्रकम्पित करनेका गर्व न कर सकी थीं, जिस कमलको आजतक कहीं किसीने भी नहीं देखा था!

अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृतसौगन्ध्यमनिलै-
रनुत्पन्नं नीरेष्वनुपहतमूर्मीकणभरैः।
अदृष्टं केनापि क्वचन च चिदानन्दसरसो
यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत्॥*

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

अचिन्त्यलीलामहाशक्तिकी प्रेरणासे सर्वप्रथम रोहिणी माताकी आँखें खुलती हैं। वे जान पाती हैं—यशोदाने पुत्र प्रसव किया है। परिचारिकाएँ भी जाग उठती हैं। पर उस इन्द्रनीलद्युति शिशुका सौन्दर्य कुछ इतना निराला है कि सभी निर्निमेष नयनोंसे देखती ही रह जाती हैं, किसीको भी समयोचित कर्तव्यका ज्ञान नहीं होता। वे सद्योजात शिशुका मधुर अस्फुट क्रन्दन सुन पा रही हैं; पर काष्ठपुत्तलिकाकी भाँति सभी ज्यों-की-त्यों, जहाँ-की-तहाँ खड़ी हैं। आनन्दातिरेकसे सबके शरीर सर्वथा अवश हो गये हैं। अवश्य ही सर्वान्तर्यामी विभु अवश शरीरमें भी सजग हैं। अतः वे ही मानो विलम्ब होते देखकर श्रीरोहिणीजीके मुखसे बोल पड़े—'री! तुम सब क्या देखती ही रहोगी? कोई दौड़कर व्रजेश्वरको सूचना तो दे दो।' सचमुच

---

*भाव यह है—अप्रतिम अनिन्द्यसुन्दर श्रीकृष्णरूपका जो माधुर्य है, वैसा इससे पूर्वके अवतारोंमें भक्तों (भृङ्गैः)-ने भी अनुभव नहीं किया। कवीश्वरों (अनिलैः)-ने भी भगवल्लीलाका वर्णन करते हुए ऐसी अतुलनीय रूपमाधुरीका विस्तार आजतक नहीं किया; भगवान् ऐसे अतुलनीय सुन्दर मधुर मनोहररूपसे प्रापञ्चिक जगत् (नीरेषु)-में कभी प्रकट ही नहीं हुए। यह रूप त्रिगुणों (ऊर्मीकणभरैः)-से सर्वथा परेका है।

अन्तर्यामी यदि न बोलते तो पता नहीं, शिशुरूप श्रीहरिको वात्सल्य-रस-पानके लिये कितनी देर और रोना पड़ता; क्योंकि रोहिणीजी तो आनन्दमें बेसुध हैं, उनमें समयोचित आदेश देनेकी शक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी है! अस्तु,

इस आदेशने परिचारिकाओंके अन्तर्हृदयमें बहते हुए आनन्दस्रोतको तरङ्गित कर दिया। फिर क्या था, दूसरे ही क्षण सूतिकागार आनन्द-कोलाहलसे मुखरित हो उठा। साथ ही जो करना था, उसमें सभी जुट पड़ीं। एक व्रजेश्वरको सूचना देने गोष्ठकी ओर दौड़ी, एक दाईको बुलाने गयी, एक उपनन्द-पत्नीको परम शुभ समाचार देकर क्षणोंमें ही लौट आयी, एक सहनाईवालेके घर जा पहुँची, और एक बावली-सी विविध अनर्गल आनन्दध्वनि करती हुई समस्त व्रजपुरमें सूचना देती हुई दौड़ने लगी। यह सब हो रहा है, पर सूतिकागारमें व्रजेश्वरी तो अभी भी किसी अनिर्वचनीय भावसमाधिमें निमग्न हैं।

उपनन्द-पत्नी आर्या, पश्चात् निकटवर्ती पुरमहिलाओंका दल नन्दप्राङ्गणमें एकत्र होने लगा। तुमुल आनन्दध्वनिसे प्रसूतिगृह ही नहीं, समस्त प्रासाद निनादित हो उठा। व्रजरानीकी भावसमाधि शिथिल हुई, धीरे-धीरे आँखें खोलकर वे देखने लगीं। कुछ क्षण निहारते रहकर समझ पायीं—गर्भस्थ शिशु भूमिष्ठ हो गया है। पर यह क्या? जननीके मुखमण्डलपर आश्चर्य एवं भय छा जाता है। वे देखती हैं—'शिशुके श्याम अङ्गोंमें मेरा मुख प्रतिबिम्बित हो रहा है। यह भी भला सम्भव है?' वात्सल्य-प्रेमवती माताका हृदय अनिष्ट-आशङ्कासे काँप उठता है। वे सोचने लगती हैं—'निश्चय ही, मैं जब मूर्च्छित थी, तब कोई बालापहारिणी योगिनी मायासे मेरा वेष धारणकर यहाँ आ गयी है और वह अन्तरिक्षमें अवस्थित है; यह उसीकी प्रतिच्छाया है। हाय! हाय! नृसिंह! जय नृसिंह! रक्षा करो। भयहारी नृसिंह-नामके प्रभावसे योगिनी नष्ट हो जाय। नृसिंह! नृसिंह! डाकिनी, चली जा। अन्यथा तू नष्ट हो जायगी।' व्रजमहिषी एक साथ ही आकुल कण्ठसे बहुत कुछ बोल गयीं। इस व्याकुलताने दृष्टिकी एकाग्रता नष्ट कर दी। बस, प्रतिबिम्ब तिरोहित हो गया। उसी क्षण वात्सल्यरसघनविग्रह यशोदाका हृदय-संचित स्नेह-रस उमड़ा, आँखोंमें आया तथा सामने कोई भी व्यवधान न पाकर अश्रुबिन्दुओंके रूपमें झरने लग गया। भावाभिभूत नन्दरानी कभी अपने सिरको अत्यन्त नीचे झुकाकर, कभी बायीं ओर टेढ़ा करके, कभी दाहिनी ओर घुमाकर और कभी ऊँचा उठाकर पुत्रके सौन्दर्यका सुख ले रही हैं। इससे अश्रुबिन्दु भी ढलककर मालाकार बन गये। मानो माताने एक निर्मल मुक्ताहारकी प्रथम भेंट दी हो! यह भेंट सर्वथा उपयुक्त ही है; क्योंकि देवाराधनका नियम ही है—पहले माला समर्पित होती है, तब नैवेद्य-अर्पण होता है। यहाँ भी तो प्रेमदेवकी आराधना ही हो रही है। सर्वोत्कृष्ट रागमयी आराधनाके उपकरण कुछ भी हों, पर नियमका व्यतिक्रम क्यों हो। इसीलिये मानो जननी यशोदा भी वात्सल्य-रस-सार स्तनदुग्धका नैवेद्य चढ़ानेके पूर्व अश्रुबिन्दुओंकी मनोहर माला अर्पण कर रही हैं—

ज्ञात्वा जातमपत्यमीक्षितुमथ न्यञ्चत्तनूस्तत्तना-
वालोक्य प्रतिबिम्बितां निजतनूपन्येति शङ्काकुला।
गच्छारादिति तन्निरासनपरा पश्यन्त्यमुष्याननं
मुक्ताहारमिवोपढौकितवती स्नेहाश्रुणो बिन्दुभिः॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

इधर गोदोहनमें संलग्न व्रजराज नन्दजीके पास सूचना देने परिचारिका आयी। प्रतिदिनका नियम है—व्रजेन्द्र आधी रात ढलते ही स्वयं गोष्ठमें चले आते हैं, गायोंकी सँभाल करते हैं। आज भी आये थे। अपने इष्टदेव नारायणका स्मरण करते हुए एक गायके समीप खड़े थे। परिचारिकाने कहा—'महाभाग! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।' व्रजराजको प्रतीत हुआ मानो हठात् किसीने कानोंमें अमृत उँडेल दिया—नहीं, नहीं, उनके चारों ओर अमृतका महासागर

लहराने लगा। वे उसमें निमग्न हो गये; इतना ही नहीं, आनन्दमन्दाकिनीकी प्रबल धारासे उस महासागरमें एक आवर्त (भँवर) बन गया है। व्रजराज उस आवर्तमें फँसकर चक्कर लगा रहे हैं। आनन्दमन्दाकिनी व्रजराजको अपने भुजपाशमें लपेटकर घुमा रही है—

प्रविष्ट इव अमृतमहार्णवेषु आलिङ्गित इवानन्दमन्दाकिन्या। (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

व्रजेन्द्र नन्दबाबा बाह्यज्ञान खोकर अन्तश्चेतनाके जगत्में जा पहुँचे। एक अतीत दृश्य सामने आ गया—व्रजराज व्रजरानीसे कह रहे हैं—'प्रिये! स्पष्ट जानता हूँ, मेरे द्वारा सम्पादित इन पुत्रेष्टि आदि अनेक यज्ञानुष्ठानोंकी सफलता असम्भव-सी है; फिर भी परिजनों, गोपबन्धुजनोंका आग्रह देखकर आयोजन स्वीकार कर लेता हूँ, संकल्पके अनुरूप ही तो परिणाम होगा। असम्भव वस्तुके लिये किये गये संकल्पकी सफलता कैसे सम्भव है? अनुष्ठान आरम्भ करते हुए जब मैं संकल्प करने बैठता हूँ तो चित्त एक अनोखे पुत्रकी कल्पना कर बैठता है। तू ही बता, भला, मेरे इष्टदेव नारायणसे अधिक सुन्दर त्रिलोकमें त्रिकालमें भी कोई सम्भव है क्या? असम्भव! सर्वथा असम्भव! पर चित्तभूमिकामें ठीक संकल्पके क्षण ऐसे ही एक, इष्टदेव नारायणकी अपेक्षा भी अधिक अनिर्वचनीय अनन्त असीम सुन्दर, बालककी मूर्ति अङ्कित हो जाती है। ओह! उस क्षण मैं स्पष्ट देखता हूँ—वह बालक तुम्हारी गोदमें तुम्हारे दुग्धस्रावी स्तनोंपर बैठकर खेल रहा है। उसके श्याम अङ्गोंको, चञ्चल सुन्दर दीर्घ नेत्रोंको देखकर मैं सर्वथा मुग्ध हो जाता हूँ। मुझे भ्रम हो जाता है कि यह स्वप्न है या जाग्रत्। यह सचमुच क्या है, मैं निर्णय ही नहीं कर पाता। मनमें आया, एक बार तुमसे पूछूँ कि तुम्हारे हृदयमें भी ऐसी ही अनुभूति उस समय होती है क्या।'

श्यामश्चञ्चलचारुदीर्घनयनो बालस्तवाङ्कस्थले
दुग्धोद्गारिपयोधरे स्फुटमसौ क्रीडन्मयाऽऽलोक्यते।
स्वप्नस्तत्? किमु जागरः? किमथवेत्येतन्न निश्चीयते
सत्यं ब्रूहि सधर्मिणि! स्फुरति किं सोऽयं तवाप्यन्तरे॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

व्रजरानी बोली—स्वामिन्! ठीक ऐसी ही कल्पना मुझे भी उस समय होती है। लज्जावश अबतक आपसे न कह सकी।

बाह्यज्ञानशून्य व्रजराज एक ही क्षणमें इस दृश्यको देख गये। परिचारिका खड़ी रहकर इनकी दशा देख रही थी। उसे क्या पता, व्रजराज क्या देख रहे हैं। वह अन्य गोपोंको लक्ष्यकर बोली—'तुमलोग सभी चलो, गोवत्सोंको छोड़ दो, दूध पी लेने दो, एक बार चलकर उस अद्भुत बालकको तो देखो। नेत्र शीतल हो जायँगे। आजतक.....' कहते-कहते परिचारिका वहीं बैठ गयी। नन्दरायको बुलाने आयी है, यह बात वह भूल-सी गयी। उसकी आँखोंके सामने प्रसूतिगृह आ गया, वहीं बैठी-बैठी वह सौन्दर्यनिधि शिशुको देखने लग गयी।

व्रजराजका मन अभीतक उसी भावस्रोतका रस ले रहा है। वे देख रहे हैं—हमलोगोंने एक वर्षतक श्रीनारायणकी उपासना की है। श्रीनारायण स्वप्नमें दर्शन देकर कह रहे हैं—'गोपवर! वह सचमुच तुम्हारा अनादिसिद्ध पुत्र है, तुम्हारा संकल्प शीघ्र ही सत्य होगा।' इस घटनाके बाद कुछ दिन बीत गये हैं। आज माघकृष्णा प्रतिपदा है, आजकी रजनी एक विचित्र शोभासे सम्पन्न-सी प्रतीत हो रही है। हठात् व्रजरानी तन्द्रासे जागकर कहती है—'नाथ! अभी-अभी मैंने स्पष्ट देखा है—ठीक वही बालक तुम्हारे हृदयसे निकलकर मेरे हृदयमें आ बैठा है। एक आश्चर्यकी बात और है। उसके सुन्दर श्याम शरीरके ऊपर एक ज्योतिर्मयी दिव्यकुमारीका मानो आवरण पड़ा हुआ है। पहली दृष्टिमें वह ज्योतिर्मयी बालिका-सा दीखता है, पर किंचित् गम्भीरतासे देखनेपर उसका अप्रतिम सुन्दर श्याम कलेवर स्पष्ट दीखने लग जाता है।' सुनकर व्रजराज आनन्दमुग्ध हो

गये हैं। वे स्वयं भी ऐसी अनुभूति कर चुके हैं।

उपर्युक्त घटनावलीका दृश्य व्रजराजके मनोराज्यकी कल्पना नहीं है। वह सर्वथा इसी रूपमें घटित हो चुकी है। परिचारिकाके शब्दोंने तो अतीतकी स्मृतिको उद्बुद्धमात्र कर दिया, जिससे वह घटना मानो वर्तमानमें अभी-अभी हो रही है, इस रूपमें व्रजराजको वह दीखने लगी। जो हो, किसी अज्ञात प्रेरणासे नन्दरायके कानोंमें अब वह शब्दावली पुनः गूँज उठी—'महाभाग! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।' नन्दरायने आँखें खोल दीं तथा वे अविलम्ब प्रासादकी ओर दौड़ पड़े। पीछे-पीछे परिचारिका भी दौड़ी। पथमें जाते हुए नन्दराय सोचते जा रहे हैं—क्या सचमुच वही, वही श्यामबालक उत्पन्न हुआ है? पर हृदयके उमड़ते हुए आनन्द-प्रवाहमें विवेक लुप्त हो गया है; विचारशक्ति आनन्द-तरङ्गोंसे तरङ्गित हो रही है, चञ्चल बन गयी है। फिर निर्णय कौन करे? व्रजेन्द्र निर्णय नहीं कर सके—

आह्लादेन समं जज्ञे बालः किं किं स एव सः।
एवं विवेकुं नन्दस्य नासीन्मतिमती मतिः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

व्रजराज आकर प्रसूतिगृहके सामने आँगनमें खड़े हो जाते हैं। प्राणोंकी उत्कण्ठा लेकर आये हैं कि पुत्रका मुख देखूँगा, पर देख नहीं पाते। प्रसूतिगृहके कपाट खुले हैं; पर उपनन्द-संनन्दका परिवार, पड़ोसकी गोपियोंकी भीड़ कपाटकी अपेक्षा अधिक सुदृढ़ व्यवधान बन गये हैं। इससे पूर्व व्रजेन्द्र जब कभी अन्तःपुरमें आते तो गोपियाँ घूँघटकी ओट कर लेतीं, किनारे हो जातीं; पर आज तो आह्लादवश वे जानतक नहीं पायीं कि व्रजेश्वर खड़े हैं, पथ पानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नन्दरायके प्राण व्याकुल हो उठे। तत्क्षण ही उन दर्शक गोपियोंके अन्तरालसे कुछ क्षणके लिये एक क्षुद्र छिद्र बन गया, व्रजेशको अपने पुत्रकी एक स्पष्ट झाँकी प्राप्त हो गयी। अहा! वही है, वही है! सचमुच वही शिशु आया है! इतनेमें छिद्रके सामने एक गोपी आ गयी, छिद्र बंद हो गया, व्रजराजकी आँखें भी बंद हो गयीं। पर आश्चर्य है, अब मानो कोई व्यवधान नहीं। गोपेश स्पष्ट देख पा रहे हैं, प्रसूति-पर्यङ्कपर उत्तानशायी होकर शिशु अवस्थित है। शिशु क्या है, मानो अनन्तजन्मार्जित पुण्यराशिरूप कल्पतरु-उद्यानका प्रफुल्ल कुसुम हो, नहीं, नहीं, समस्त उपनिषद्रूप कल्पलता-श्रेणीका मधुर फल हो—

कुसुममिव चिरतरसमयसमुत्पन्नकल्पमहीरुहारामस्य।
फलमिव सकलोपनिषत्कल्पलताविततेः।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

उपनन्दजी नन्दके आनेसे पूर्व ही आ गये थे। वे समयोचित व्यवस्थामें लगे हैं। ब्राह्मणोंको बुलानेके लिये दूत भेज चुके हैं। अब तोरणद्वारके पास नगारेवालोंको समस्त व्रजमें घोषणा करनेकी बात समझा रहे हैं। गद्गद कण्ठसे कह रहे हैं—

नैन भरि देखौ नंदकुमार।
जसुमति-कूख चंद्रमा प्रगट्यौ या ब्रज कौ उजियार॥
धन जिन जाउ आजु कोऊ गोसुत अरु गाय गुवार।
अपनें अपनें भेष सबै मिलि लावौ बिबिध सिंगार॥
हरद-दूब-अच्छत-दधि-कुंकुम मंडित करौ दुवार।
पूरी चौक बिबिध मुक्ताफल, गावौ मंगलचार॥

सहनाईवाले सदलबल आ पहुँचे हैं। नगारेवालोंने पहला डंका लगाया। दूसरे ही क्षण सहनाईवालोंने भी मधुरातिमधुर रागिनीकी तान छेड़ दी। नन्दप्रासादकी मणिमय भित्ति, आच्छादन (छत) और स्तम्भोंको निनादित करती हुई वह सुरीली ध्वनि समस्त व्रजपुरमें फैलने लगी। इससे पहले भी व्रजमें अनेकों बार सहनाई बजी थी, पर आजकी तान तो आज ही बजी है।

अब ब्राह्मण आ गये हैं। व्रजेश स्नान करके अलंकृत होकर ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं। मातृकापूजन, नान्दीमुख-श्राद्ध सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको साथ लिये हुए वे सूतिकागारमें आते हैं। विधिवत् जातकर्म-संस्कार आरम्भ होता है। यह नित्य अजन्माका

जातकर्म है। जिनके एक-एक रोमकूपमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक-एक ब्रह्मा जिनके नियन्त्रणमें सृजनका कार्य वहन करते हैं, आज उन्हींका ब्रह्ममुखनि:सृत वेदमन्त्रोंसे संस्कार हो रहा है। यह कैसी विडम्बना है! लीलाविहारिन्! तुम्हारी मुनि-मन-मोहनकारिणी लीलाको धन्य है! अस्तु, '**भूस्त्वयि**' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करके शिशुके बिम्बविडम्बित अधरोष्ठको किञ्चित् खोलकर सुवर्णसंयुक्त अनामिका अँगुलीसे घृतका एक कण चटाया गया। आयुष्यक्रिया करते समय ब्राह्मण देवता शिशुके दक्षिण कर्णमें '**अग्निरायुष्मान्**' इत्यादि जपनेके लिये मुख निकट ले गये। उन्हें प्रतीत हुआ मानो यह कर्ण नहीं, किसी अनिर्वचनीय श्यामल तेजोलतिकाका नवोन्मिषित पल्लव है। जपते समय ब्राह्मणके सारे शरीरमें कम्प होने लगा। ब्राह्मण आश्चर्यमें थे कि सारे अङ्ग काँपने क्यों लगे, आजतक तो ऐसी घटना नहीं हुई! पश्चात् '**दिवस्परि**' इत्यादि मन्त्रसे बालकका स्पर्श किया गया। फिर भूमि अभिमन्त्रित की गयी। एक बार बालकका अङ्ग पुन: पोंछ दिया गया। आगेकी अन्य क्रियाएँ सम्पन्न की गयीं। अन्तमें शिशुके कुञ्चितकेशकलापमण्डित मस्तकसे सटाकर '**आपो देवेषु**' इत्यादि मन्त्रसे एक जलपात्र सूतिका-पर्यङ्कके नीचे रखा गया। इस तरह जातकर्म-संस्कार सम्पन्न हुआ—

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा॥

(श्रीमद्भा० १०। ५। २)

अब दाई नालछेदन करती है। किसकी नाल?

जाकें नार आदि ब्रह्मादिक सकल बिस्व-आधार।
सूरदास-प्रभु गोकुल प्रगटे मेटन कौं भूभार॥

× × ×

जाकें मार भए ब्रह्मादिक सकल, जोग-ब्रत साध्यौ।
ताकौ नार छीनि ब्रजजुबती बाँटि तगा सौं बाँध्यौ॥

नेग पानेका इतना सुन्दरतम अवसर धात्रीके जीवनमें कभी नहीं आया था। इस विचित्र सुन्दर शिशुको देखकर ही वह सब कुछ पा चुकी थी, निहाल हो चुकी थी; पर व्रजरानीसे प्रणय-झगड़ा करके नेग लेनेका सुदुर्लभ आनन्द वह क्यों छोड़ने लगी। लेना ही चाहिये, व्रजेश-कुलकी धात्री जो ठहरी—

औरन के हैं सकल गोप, मेरें एक भवन तुम्हारौ।
मिटि जो गयौ संताप जनम कौ, देख्यौ नंद-दुलारौ॥
बहुत दिनन की आसा लागी, अगरिन झगरौ कीनौ।

तथा व्रजेश्वरी भी कब चूकनेवाली थीं—

मन में बिहँसत हैं नँदरानी, हार हिये कौ दीनौ॥

नन्दरानीके गलेको सुशोभित करनेवाला मणिमुक्ताका मनोहर मूल्यवान् हार सौभाग्यमयी दाईके गलेमें झूलने लगा। धात्रीने उत्फुल्ल नेत्रोंसे एक बार व्रजेश्वरीकी ओर देखा, फिर शिशुकी ओर; तथा क्षणोंमें ही नालछेदन सम्पन्न हो गया। अबतक शीलवती व्रजरानीके चित्तमें शास्त्रमर्यादाका विचार था; स्तनदानके पूर्व ही जातकर्म-संस्कार हो जाना चाहिये—यह मर्यादा मानो व्रजेन्द्रगेहिनीके हृदयमें बाँध-सी बनी थी, इस बाँधसे वात्सल्यरसकी धाराएँ रुकी हुई थीं। अब मर्यादा पूरी हो चुकी। व्रजरानी बड़ी ललकसे हाथ बढ़ाती हैं, अपने हृदय-धनको उठाकर छातीसे लगा लेती हैं। द्विदल जवा-पुष्पकी कलिकासदृश अधरोष्ठको खोलकर उसमें अपना स्तनाग्र दे देती हैं। वात्सल्यरस-सुधा-साररूप दूध झर रहा है और अलौकिक नराकृति परब्रह्म बड़े प्रेमसे और उत्कण्ठासे उसका पान कर रहे हैं।

इधर व्रजेश्वर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे रहे हैं। व्रजराजने उस दिन बीस लाख गायें ब्राह्मणोंको दीं। गायोंके सींग सुवर्णपत्रोंसे, खुर रजतपत्रोंसे मढ़े हैं; प्रत्येकके कण्ठ-देशमें बहुमूल्य मणियोंकी माला है। सभी नवप्रसूता हैं। व्रजेशकी आज्ञासे अविलम्ब तिलके सात पर्वत निर्मित हुए, उन पर्वतोंपर सघन पत्रावलीकी तरह रत्न बिछा दिये गये, फिर पर्वतोंको सुनहले वस्त्रोंसे सर्वत्र ढक दिया गया। ये पर्वत भी ब्राह्मणोंके लिये ही बने थे, उन्हें

दान कर दिया गया। व्रजराज जिस समय इस पर्वतदानका संकल्प पढ़ने लगे, उस समय आश्चर्यमें भरे हुए ब्राह्मण कुछ क्षण अवाक् रह गये।

अब समस्त व्रज सजाया जा रहा है। व्रजका प्रत्येक प्रासाद, प्रासादका प्रत्येक गृह, द्वार, प्राङ्गण, गृहद्वार-प्राङ्गणका कोना-कोनातक पहले झाड़ दिया गया, पश्चात् चन्दन-वारिसे धो दिया गया। फिर सर्वत्र पुष्प-रस-सार (इत्र) छिड़क दिया गया। रंग-बिरंगे वस्त्र एवं सुकोमलतम पल्लवोंके बंदनवार बाँधे गये। चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ यथास्थान फहरा रही हैं। पुष्पमालाकी लड़ियों मणिमय स्तम्भों एवं गवाक्ष-रन्ध्रोंसे बाँध दी गयी हैं। प्रत्येक द्वारपर आम्रपल्लवसमन्वित जलपूर्ण मङ्गलघट है। हरिद्रा, दूब, अक्षत, दधि और कुङ्कुमसे प्रत्येक द्वारदेश चित्रित है। स्थान-स्थानपर मोतियोंके चौक पूरे गये हैं।

व्रजेशके ऐसे सजे हुए तोरण-द्वारपर एक ओर ऊँचे आसनपर विराजमान ब्राह्मण आशीर्वादात्मक मङ्गलवचनोंका पाठ कर रहे हैं। उनसे कुछ दूरपर सूत पुराणका पारायण कर रहे हैं। उनसे कुछ हटकर मागध व्रजेश-वंशावलीका कीर्तन कर रहे हैं। उनसे सटी हुई बंदीजनोंकी पंक्तियाँ हैं, वे मधुर स्वरमें व्रजेशकी स्तुति गा रहे हैं। ब्राह्मणोंके ठीक सामने दूसरी ओर संगीतज्ञोंका दल है, वे वीणाके स्वरमें स्वर मिलाकर सुमधुर रागिनी अलाप रहे हैं। उनसे कुछ दूरपर भेरी बजानेवालोंका दल है। इनसे कुछ हटकर दुन्दुभियाँ बज रही हैं। इनसे कुछ दूरपर बंदीजनोंके ठीक सामने सहनाईवाले मधुर तान छेड़ते हुए रसकी वर्षा कर रहे हैं। बीचमें राजपथ है, जिसपर गौओं, गोपों और गोपाङ्गनाओंकी भीड़ उमड़ी चली आ रही है।

गौ, गोवत्स आदिको हल्दी-तेलसे रँगकर, गैरिक आदि धातुओंसे चित्रितकर, मयूरपिच्छ एवं पुष्परचित माला पहनाकर, सुवर्णशृङ्खलासे मण्डित करके तथा स्वयं बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण, अँगरखे, पगड़ीसे विभूषित होकर हाथोंमें, काँवरोंमें, सिरपर घी, दही, नवनीत, आमिक्षासे पूर्ण घड़े लिये व्रजके समस्त गोप नन्दभवनकी ओर आ रहे हैं। उनके पीछे दौड़ती हुई गोपाङ्गनाएँ आ रही हैं—

सुनि धाईं सब ब्रज-नारि सहज सिंगार किऐं।
तन पहिरैं नौतन चीर, काजर नैन दिऐं॥
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिऐं।
कर कंकन, कंचन-थार मंगल-साज लिऐं॥
वे अपने-अपने मेल निकसीं भाँति भली।
मानों लाल मुनिन की पाँति पिंजरन चूर चली॥
वे गावैं मंगलगीत मिलि दस-पाँच अलीं।
मानों भोर भयौ रबि देखि फूलीं कमलकलीं॥
उर अंचल उड़त न जान्यौ सारी सुरँग सुहीं।
मुख माँड्यौ रोरी-रंग सेंदुर माँग छुहीं॥
स्रम श्रवनन तरल तरौना, बेनी सिथिल गुहीं।
सिर बरखत कुसुम सुदेस मानों मेघ-फुहीं॥

गोपाङ्गनाएँ गोपोंसे थीं पीछे, पर पहुँचीं पहले—

पिय पहले पहुँचीं जाय अति आनंद भरी।

गोपाङ्गनाओंका स्वागत रोहिणी एवं उपनन्द-पत्नीने किया। पश्चात् वे सब क्रमशः सूतिकागारमें गयीं। शिशुका श्रीमुख देखकर अनुभव करने लगीं कि स्रष्टाने नेत्रोंकी सृष्टि इस नन्दपुत्रको निहारनेके लिये ही की है, आज वह नेत्र-निर्माणका फल प्राप्त हो गया—

अनन्तरं प्रविश्य सूतिकाभवनमालोक्य च तमभिनवं नवं नयननिर्माणस्य फलमिव। (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

गोपाङ्गनाएँ नन्दनन्दनको आशीर्वाद देने लगीं—

चिर जीयौ जसुदानंद, पूरन-काम करीं।
धन-धन्य दिवस, धन रात, धन यह पहर-घरी॥
धन-धन्य महरिजु की कूखि भाग-सुहाग भरी।
जिन जायौ ऐसौ पूत, सब सुख फलन फरी॥
थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी॥
पाहि चिरं व्रजराजकुमार!

अस्मानत्र शिशो! सुकुमार! (श्रीगोपालचम्पूः)

रे सुकुमार बालक! रे व्रजराजकुमार! तू बड़ा होकर चिरकालतक हमलोगोंकी रक्षा कर।

बाहर समस्त व्रजगोपोंकी मण्डली गायोंसहित आ पहुँची है—

सुनि ग्वालनि गाय बहोरि बालक बोलि लए।
गुहि गुंजा, घसि बन धातु, अँग-अँग चित्र ठए॥
सिर दधि माखन के माट, गावत गीत नए।
सँग झाँझ-मृदंग बजावत सब नँदभवन गए॥

नन्दजी सबसे यथायोग्य मिलते हैं। आनन्दमें उन्मत्त-से हुए गोप हल्दी-दही छींटते हुए विविध भाव-भङ्गिमाओंका प्रदर्शन कर रहे हैं—

एक नाचत, करत कुलाहल, छिरकत हरद-दही।
मानों बरखत भादौं मास नदी घृत-दूध बही॥
जाकौ जहाँ-जहाँ चित जाय, कौतुक तहीं-तहीं।
रस आनँद मगन गुवाल काहू बदत नहीं॥
एक धाइ नंद पै जाय पुनि-पुनि पाय परैं।
एक आपु-आपुही माँझ हँसि-हँसि अंक भरैं॥
एक अंबर-सबहि उतारि देत निःसंक खरे।
एक दधि-रोचन अरु दूब सबनि के सीस धरैं॥

गोपोंका आनन्दोन्माद उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। बूढ़े व्रजेन्द्रको भी उन सबने अपने बीचमें ले लिया है और इतना दूध, दही, घृत और नवनीत ढरकाया है कि नदी-सी बह चली है। दूध-दहीके अनेकों गम्भीर गर्त बन गये हैं। उनमें लोटते हुए गोपोंका शरीर सर्वथा उज्ज्वल दीखने लगा है, मानो ये गोप दुग्धसागरकी चञ्चल तरङ्गें हों।

व्रजेन्द्र कभी तो इस दूध-दहीकी नदीमें स्नान करने आते हैं, कभी रत्नराशि लुटानेके लिये द्वारदेशपर खड़े हो जाते हैं। याचनाकी आवश्यकता नहीं, कोई भी विद्योपजीवी आकर खड़ा हुआ कि नन्दराज रत्नोंकी झोली, वस्त्रोंकी गठरी और गोधनकी टोली लेकर उसके पास जा पहुँचे; सदाके लिये उसका मँगतापन मिटा दिया। व्रजेश-कुलके सूत, मागध, बंदीजन आज अयाची बन गये—इसमें तो कहना ही क्या है।

व्रजेन्द्र जो इतनी सम्पत्ति लुटा रहे हैं, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। उनका भंडार ही अब अनन्त, असीम बन गया है; क्योंकि सारे विश्वकी समस्त सम्पत्ति जिनकी चरणसेविका लक्ष्मीजीकी आंशिक विभूति है, वे स्वयं आज पुत्रके रूपमें व्रजेशके घर पधारे हैं। प्राकृत भंडारकी सीमा होती है, उसमेंसे कुछ निकालनेपर उतना अंश कम हो जाता है, उतने अंशकी पूर्णता अपेक्षित होती है। पर व्रजेशका भंडार प्राकृत नहीं; वह ऐसा है कि उसमेंसे जितना वे निकालेंगे, उतना ही बचा रह जायगा। अपनी जानमें सम्पूर्ण निकाल लेंगे तो भी उसमें सम्पूर्ण बचा रहेगा। इसीलिये उनके देनेमें आज विराम नहीं, हिसाब नहीं; देते ही चले जा रहे हैं। हाँ, देते समय व्रजेशके वात्सल्य-प्रेमपरिभावित मनमें निरन्तर केवल एक भावना है—

अनेन प्रीयतां विष्णुस्तेन स्तान्मे सुते शिवम्।

(श्रीगोपालचम्पूः)

इस दानसे मेरे इष्टदेव नारायण प्रसन्न हों, उनकी प्रसन्नतासे मेरे पुत्रका कल्याण हो।

भीतर, अन्तःपुरमें हरिद्रा-तैलकी कीच मची है। गोपाङ्गनाएँ परस्पर एक-दूसरेपर हल्दी-तेल छिड़क रही हैं। छिड़कती हुई बाहर आती हैं। व्रजेन्द्रकी, गोपोंकी दशा देखकर आनन्दमें निमग्न होकर गाने लगती हैं—

पश्य सखीकुल गोकुलराजं
पुत्रोत्सवमनु खेलाभाजम्।
उदधिप्रभदधिसम्प्लवदेशं
परितोघूर्णितमन्दरवेशम्॥
मध्यघटीफणिराजे कृष्टं
हृद्यसुहृद्भिरतीव च हृष्टम्।
मध्ये मध्ये दुर्लभदानं
ददतं दधतं विस्मयभानम्॥
एकं पुनरलमभवदपूर्वं
अजनि विधुर्यत यदितः पूर्वम्॥*

(श्रीगोपालचम्पूः)

आज व्रजेश्वरने सबसे अधिक सम्मान श्रीरोहिणीजीका

* सखियो! गोकुलेश्वर नन्दजीको तो देखो। पुत्रोत्सवके आनन्दमें निमग्न होकर आज वे कितने चञ्चल, कितने कौतुकपरायण हो रहे हैं। बहनो! यह सामनेका दृश्य देखकर मुझे तो सागर-मन्थनकी स्मृति हो रही है। देखो

किया है। आजका सम्मान रोहिणीने स्वीकार भी कर लिया है। इससे पूर्व रोहिणीने कभी नन्द-घरके सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषणोंकी ओर ताकातक नहीं था। वे सदा पतिवियोग, पति-बन्धनसे मन-ही-मन खिन्न रहती थीं। पर आज यशोदानन्दनका मुख देखते ही रोहिणीका रोम-रोम आनन्दमें निमग्न हो गया। इसीसे वे नन्दप्रदत्त दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर पुरमहिलाओंके सत्कारमें लगी हुई हैं।

दिन बीत चुका है। पर गोप-गोपाङ्गनाओंका उत्साह शिथिल नहीं हुआ। अभी भी उसी नृत्य, उसी आनन्द-कोलाहलसे नन्दप्रासाद मुखरित हो रहा है। एक वृद्ध बन्दी भी दिनभरसे अतिशय सुमधुर कण्ठसे गाता रहा है। दिनभर उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती रही है। अब सूर्य अस्ताचलको जा रहे हैं, पर वह अब भी पीली पगड़ी बाँधे सहनाईवालेके स्वरमें स्वर मिलाकर गा रहा है—

आज कहूँ ते या गोकुल में अद्भुत बरषा आई।
मनिगन-हेम-हीर-धारा की ब्रजपति अति झरि लाई॥
बानी बेद पढ़त द्विज-दादुर हिऐं हरषि हरियारे।
दधि-घृत-नीर-छीर-नाना रँग बहि चले खार-पनारे॥
पटह-निसान-भेरि-सहनाई महा गरज की घोरें।
मागध-सूत बदत चातक-पिक, बोलत बंदी-मोरें॥
भूषन-बसन अमोल नंदजू नर-नारिन पहराए।
साखा-फल-दल-फूलन मानों उपबन झालर लाए॥
आनँद भरि नाचत ब्रजनारी पहिरें रँग-रँग सारी।
बरन-बरन बादरन लपेटी बिद्युत न्यार-न्यारी॥
दरिद्र-दवानल बुझे सबन के जाचक-सरबर पूरे।
बाढ़ी सुभग सुजस की सरिता, दुरित-तीरतरु घूरे॥
ऊल्यौ ललित तमाल बाल एक, भई सबन मन फूल।
छाया हित अकुलाय गदाधर तक्यौ चरन कौ मूल॥

तो सही, दहीसे भरा हुआ यह व्रज सागर-जैसा हो गया है और उसमें मन्दर पर्वत-से होकर नन्दजी सर्वत्र घूम रहे हैं। उनकी कमरमें लपेटा हुआ वस्त्र घृत-दधिसे चिकना होकर, फूलकर ठीक वासुकि नाग-जैसा बन गया है। उसे पकड़कर उनके प्रिय सुहृद्जन उन्हें इधर-उधर खींच ले जा रहे हैं और वे अतिशय प्रसन्न हो रहे हैं। इतना ही नहीं, जैसे समुद्र-मन्थनके समय अनेकों रत्न निकल रहे थे, मन्दर-पर्वत सागरके रत्नोंको निकाल-निकालकर फेंक रहा था, वैसे ही ये नन्दजी बीच-बीचमें रत्नराशि लुटाने लग जाते हैं। अहा! आज इनकी कैसी आश्चर्यमयी शोभा है। पर बहनो! क्या बताऊँ, आश्चर्यकी कोई सीमा नहीं, इस सागरमन्थनमें तो एक अपूर्व बात हुई है। सर्वत्र प्रसिद्ध है—चन्द्रमा मन्थन प्रारम्भ होनेपर—सागर मथे जानेपर निकले थे; पर नन्दका यह शिशु-चन्द्र तो मन्थन प्रारम्भ होनेके पूर्व ही प्रकट हो गया।

मथुरासे श्रीवसुदेवका संदेश लेकर दूतका आगमन और नन्दजीके द्वारा उसका सत्कार

यमुनाकी चञ्चल लहरियोंको भुजाओंसे चीरता हुआ श्रीवसुदेवका दूत व्रजपुरकी ओर अग्रसर हो रहा है। उसकी दृष्टि नन्दप्रासादके उत्तुङ्ग स्वर्णिम गुम्बजपर केन्द्रित है। वह स्पष्ट देख पा रहा है—इस घनतमसाच्छन्न रात्रिको दिन-सा बनाता हुआ एक मणिमय मङ्गलदीप प्रासादके शिखर-कलशपर सुशोभित है। दीपकी शीतल किरणें सर्वत्र फैल रही हैं, मानो व्रजेशके वंशदीप (नवजात पुत्र)-की स्निग्ध ज्योतिसे प्राणान्वित होकर वह मणिदीप भी आज अतिशय उत्फुल्ल हो रहा हो, हँस रहा हो!

दूत किनारे लगा। जिस घाटपर व्रजेश प्रतिदिन स्नान करने आते हैं, वहीं धारासे ऊपर उठ आया, तटपर खड़ा हो गया। पुनः एक बार उसने उमड़ी हुई यमुनाकी ओर देखा। उसे अत्यन्त आश्चर्य है—ऐसी प्रखर धारामें अँधेरी रातके समय तैरकर वह सकुशल इस पार अनायास कैसे आ गया। उसने अञ्जलि बाँध ली, घुटने टेक दिये तथा सिरसे पृथ्वीको छूकर इस अप्रत्याशित रक्षाके लिये विश्वपतिकी अभिवन्दना की। दूतको यह पता नहीं कि जिनके अव्यक्त पादपङ्कजमें वह अपना सिर लुटा रहा है, वे विश्वेश्वर ही व्रजेश्वरके घर पधारे हैं। अपनी मधुर चरितावलीसे आत्माराम योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंको भी भक्तिपथका पथिक बनानेकी अभिसंधि लेकर, लीला-रस-सुधाकी शत-सहस्र मन्दाकिनीधाराओंमें अपने भक्तोंको बहाते हुए सदाके लिये आनन्दसिन्धुमें निमग्न कर देनेका संकल्प करके, दैत्यसेनाके गुरुतर भारको सहनेमें असमर्थ धरणीका भार उतारनेके उद्देश्यसे वे स्वयं विश्वपति ही व्रजमें पधारे हैं और ऐसे पधारे हैं, मानो सर्वथा प्राकृत शिशु ही हों—

आत्मारामान्मधुरचरितैर्भक्तियोगे विधास्यन्
नानालीलारसरचनयाऽऽनन्दयिष्यन् स्वभक्तान्।
दैत्यानीकैर्भुवमतिभरां वीतभारां करिष्यन्
मूर्तानन्दो व्रजपतिगृहे जातवत् प्रादुरासीत्॥
(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

उन गीले वस्त्रोंको निचोड़े बिना ही दूत चल पड़ा; क्योंकि पता नहीं, इतनेमें ही कोई घाटपर आ जाय, पूछ बैठे—कौन हो? कैसे आये? कहाँ जाओगे? पर आज व्रजमें किसीने भी उसे नहीं टोका। टोकता ही कौन! भेरी-दुन्दुभि आदि वाद्योंकी तुमुल ध्वनिमें, नृत्य-गीतके राग-रङ्गमें व्रजपुरवासी आत्मविस्मृत हो रहे हैं, उनमें किसी आगन्तुकका अनुसंधान रखनेकी शक्ति ही कहाँ है। दूत निर्बाध व्रजपुरकी अनुपम शोभा निहारता हुआ आगे बढ़ रहा है। पुरका प्राचीर इन्द्रनीलमणिनिर्मित है, मरकतमणिरचित गृहावली है, आच्छादन (छत) सुवर्णमय हैं, स्तम्भोंका निर्माण प्रवालसे हुआ है, द्वारसमूह पद्मरागमणिके हैं। सर्वत्र मणिदीपोंकी पंक्तियाँ जगमग-जगमग कर रही हैं। कोटि-कोटि गोराशि विभिन्न आभूषणोंसे विभूषित होकर गोष्ठमें खड़ी है; कोटि-कोटि गोवत्स-समूह व्रजके आनन्दकलरवसे प्रभावित होकर उछल रहे हैं; विविध शृङ्गारसे सजे हुए गोपोंके, अद्भुत अलंकारोंसे आभूषित व्रजाङ्गनाओंके दल-के-दल नृत्य-गीतमें संलग्न हैं। दूत देखकर चकित रह गया। इससे पूर्व कितनी बार संदेश लेकर वह व्रजमें आया है, पर आजकी अनुपम शोभा देखकर तो वह एक क्षणके लिये भ्रमित हो गया—क्या नन्दव्रजमें दिव्य गोलोककी सम्पदाका विकास तो नहीं हो गया है? दूतके पैरोंमें चलनेकी शक्ति नहीं रही, वह स्तब्ध खड़ा रह गया। वास्तवमें तो बड़भागी दूतका यह भ्रम नहीं है, उसने परम सत्यका ही अनुभव किया है; सचमुच गोलोकका ही अवतरण हुआ है।

किसी अचिन्त्यशक्तिने दूतमें समयोपयोगी शक्तिका

संचार किया। वह नन्दद्वारपर जा पहुँचा। फिर द्वारपालको साथ लेकर वहाँ चला गया, जहाँ व्रजेन्द्र अर्द्धनिमीलित नेत्रोंसे अपने इष्टदेवकी उपासना कर रहे हैं, श्रीमन्नारायणका ध्यान कर रहे हैं। दिनभर बन्धु-बान्धवोंका स्वागत-सत्कार करके, उनके आनन्दनृत्यमें सहयोग देकर, अपरिमित रत्नराशि, अन्नराशि लुटाकर, असंख्यात गोदान करके अब डेढ़ पहर रात बीतनेपर वे एकान्त उपासनाके लिये अवकाश पा सके हैं। पर आजका ध्यान उनके लिये एक पहेली-सा बन गया है। व्रजेश अपनी सम्पूर्ण वृत्तियाँ एकत्र करके चाहते हैं—श्रीमन्नारायणके मकरकुण्डल-ज्योतिसे उद्भासित अमल कपोलोंका, सुघड़ नासापुटोंका, सुन्दर नेत्रोंका, घनकृष्ण कुञ्चित केशराशिका ध्यान करें; पर यह ध्यान न होकर ध्यान होता है साढ़े छः पहर पूर्व भूमिष्ठ हुए अपने शिशुका। व्रजेशके मानसपटपर शिशुके गण्डयुगल, उसके नासापुट, उसके नेत्र, उसकी कुटिल कुन्तलराशि नाचने लगती है। गण्डयुगल तो मानो द्रवीभूत नीलकान्तमणिके जलमें दो बृहद् बुद्बुद उठे हों, नासापुट मानो कालिन्दीनीरके दो बुद्बुद हों, नेत्र मानो दो मुकुलित नीलोत्पल हों; कुन्तलराशिकी शोभा तो निराली ही है, मानो भ्रमरोंका दल प्रचुर परिमाणमें नवमकरन्दराशिका पान कर, अतिशय मत्त होकर, उड़नेकी सामर्थ्य खोकर निश्चल अवस्थित हो—

सद्योमकरन्दसंदोहातिपानमदातिशयेन भ्रमणासमर्थतया निश्चलं मधुकरनिकरमिव कुटिलकचकलापम् × × × मुकुलितनीलोत्पले इव लोचने। द्रुततरनीलमणिजलमहाबुद्बुदायमानं गण्डयुगलम् × × तरणितनयातनुबुद्बुदायमानं नासापुटकम्।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

व्रजेशके जीवनमें यह पहला अवसर है कि उपासनाके समय उनका मन नारायणमें तन्मय नहीं हुआ। उन्होंने अथक चेष्टा की, बार-बार वृत्तियोंको तन्मय करना चाहा; पर आज तो वह शिशु हृदेशपर अधिकार किये बैठा है। व्रजेशकी दृष्टिमें यह महान् अपराध हो रहा है, इष्टदेवकी उपासनाके समय पुत्रका चिन्तन होना कदापि ग्राह्य नहीं; पर वश नहीं चलता। व्रजेश हारकर आँखें खोलकर 'श्रीनारायण, नारायण' करने लगे। इसी समय दूतने चरणोंमें सिर रखा। देखते ही व्रजेन्द्र जान गये—भाई वसुदेवका गुप्त संदेशवाहक है, मेरा पूर्वपरिचित है।

अतिशय उत्कण्ठित होकर व्रजराजने कुशल पूछी। दूत बोला—

जीवति नृशंसे कंसे किमिव निरङ्कुशं कुशलम्? तच्च मम वेशेनैव वितर्क्यताम्। यदस्माकं तरण्या तरणं तरणौ च सति कुत्रापि प्रस्थानं न सम्भवतीति बाहुभ्यामेव संतरणात्तीर्णतरणिजः सार्द्रवस्त्रः प्रदोषे समागतोऽस्मि॥ (श्रीगोपालचम्पूः)

'महाराज! नृशंस कंसके जीते-जी निर्बाध कुशल कहाँ! मेरा यह वेश देखकर ही आप अनुमान कर लें। दिनके समय हमलोग नावसे पार नहीं हो सकते, कहीं भी नहीं जा सकते। इसीसे रातमें यमुना तैरकर इस पार आया हूँ, गीले वस्त्रोंसे ही सेवामें उपस्थित हुआ हूँ।'

श्रीवसुदेवका समाचार देते हुए दूतने कहा—"श्रीमन्! लगभग सात पहर पूर्वकी बात है। कंस-कारागारमें हमारी महाराज्ञी श्रीदेवकीजीने एक कन्याको जन्म दिया। उसी क्षण प्रहरीने कंसको सूचना दी। वह दुष्ट दौड़ा आ पहुँचा। आह! महाराज्ञी उस सद्योजात कन्याको अपने फटे आँचलमें लपेटे हृदयसे चिपकाये बैठी थीं। कंसको देखकर रो पड़ीं। दुःखसे अतिशय कातर होकर कंसका अनुनय-विनय करती हुई बोलीं—'मेरे भाई! एक बार मेरे मुखकी ओर देख लो, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ न? मैं तुमसे भीख माँग रही हूँ। यह मेरी अन्तिम संतान है, इसके जीवनकी भीख दे दो; हाय! यह तो तुम्हारी पुत्रवधूके समान है, इसे मत मारो। तुमने मेरे बहुत-से बच्चे मार डाले, पर उनके लिये मैं कुछ नहीं कहती। तुम्हारा दोष नहीं, मेरा भाग्य ही ऐसा था। अब इस बार दया कर दो, मुझ मन्दभागिनीका सहारा मत छीनो, इस अबलाको जीवनदान दो।' रोती हुई देवकीने कंसके चरणोंपर अपना सिरतक रख दिया। पर उस पाषाणहृदयमें दया

कहाँ! आँखें तरेरकर देवकीको भर्त्सना करता हुआ वह लपका, देवकीकी गोदसे उसने बालिकाको छीन लिया, उस कुसुमसुकुमार सद्योजात बालिकाके चरणोंको पकड़कर पासके पत्थरपर पटक ही दिया।''

यह सुनते ही व्रजेन्द्रकी आँखोंसे झर-झर करता हुआ अश्रुप्रवाह निकल पड़ता है। पर दूतने अतिशय शीघ्रतासे कहा—''देव! आगेकी बात सुनें, अद्भुत आश्चर्यमयी घटना है। बालिका कंसके हाथसे छूटते ही आकाशमें उड़ गयी। दूसरे ही क्षण बालिकाका रूप बदला। यह अष्टभुजादेवीके रूपमें परिणत हो गयी। वास्तवमें वे देवी ही थीं। ओह! दिव्य माला, दिव्य वस्त्र, दिव्य चन्दन एवं दिव्य मणिमय आभूषणोंसे सुसज्जित देवीका वह रूप देखने ही योग्य था। आठों भुजाओंमें आठ आयुध— धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, खड्ग, शङ्ख, चक्र, गदा सुशोभित थे। इतना ही नहीं, उनके चारों ओर सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ, किंनर, नाग भेंट अर्पण कर रहे थे, अञ्जलि बाँधकर स्तुति कर रहे थे। देवीने कहा—

'मूर्ख! मुझे मारकर क्या लेगा? तेरा जीवन समाप्त करनेवाला, तेरे पूर्वजन्मका वैरी तो कहीं आ चुका, प्रकट हो चुका। निर्दोष बालकोंको अब मत मारना।'

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत्।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा॥

(श्रीमद्भा० १०। ४। १२)

व्रजेश्वर अतिशय आश्चर्यमें भरकर सुन रहे हैं। दूत कहता जा रहा है—''देवीके वचनोंने कंसके स्वभावमें कुछ क्षणोंके लिये एक विलक्षण परिवर्तन ला दिया। वह सचमुच पश्चात्तापकी आगमें जल उठा। मेरे महाराज वसुदेवके एवं महारानी श्रीदेवकीके चरणोंमें लुट पड़ा। उस समय उसकी आर्ति सचमुच हृदयको पिघला देनेवाली थी। महाराज एवं महाराज्ञीका दयार्द्र हृदय विगलित हो उठा। ऐसे नृशंसको भी उन दोनोंने क्षमादान दे ही दिया। वे दोनों कारागारसे बाहर आये। कंस अपने प्रासादमें गया। पर वहाँ जाकर उस असुराधमने जो विचार स्थिर किया, जो कार्यक्रम निर्धारित किया, उसे सुनकर तो श्रीमान् भी काँप उठेंगे। आह! राक्षसमन्त्रिमण्डलके परामर्शसे उसने यह स्थिर किया है कि नगरोंमें, ग्रामोंमें, व्रजपुरोंमें, अन्य स्थानोंमें जितनी नव संतति हैं, जितने बच्चोंने जन्म धारण किया है, दस दिनसे अधिक आयुके हों या कमके, सभी मार दिये जायँ। इतना ही नहीं, संहार प्रारम्भ भी हो चुका है। मेरे महाराज श्रीवसुदेवजीने इस सारे वृत्तान्तकी श्रीमान्को सूचना देनेकी मुझे आज्ञा दी है। साथ ही अपनी ओरसे विशेष परामर्श यह दिया है कि प्रचुर परिमाणमें भेंट अर्पण कर, राज्य-कर चुकाकर इस नरपालरूप राक्षस कंसकी संतुष्टि प्राप्त करें, जिससे उसकी कराल दृष्टि नन्दव्रजपर न पड़े, एवं कर चुकानेके बाद मुझसे अवश्य मिलें''—

शीघ्रमेवास्मै राजव्याजराक्षसाय संगत्य वलिर्वलयितव्यो मिलितव्यश्चाहमिति। (श्रीगोपालचम्पूः)

दूतका आना सुनकर उपनन्द आ गये थे। उन्होंने भी सारी घटना सुनी है। उन्होंने श्रीवसुदेवजीकी सम्मतिका पूर्ण समर्थन किया। यह निश्चित हुआ— पाँच दिन बाद, सूतिका-षष्ठीकी पूजा करके स्वयं व्रजेन्द्र असंख्यात रत्नराशि, दधि, दुग्ध, घृत-मधुसे पूर्ण अगणित स्वर्णभाण्ड लेकर मथुरा जायँ, कंसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करें। अस्तु!

व्रजेन्द्र अब अपने हाथों दूतके गीले वस्त्रोंको उतारते हैं। सूखे वस्त्र पहनाते हैं। पीली धोतीको फेंट दूतने कसतक नहीं पायी थी कि व्रजराज स्वर्णताराओंसे चित्रित अपनी रेशमी अचकन उसे पहनाने लगे। अचकनके बंद कसनेके पूर्व ही जरकसी बँधी-बँधायी पाग उसके सिरपर रख दी। स्वयं दौड़कर गये, एक सुन्दर मणिखचित कलँगी ले आये, उसे पागपर बाँध दिया। कलँगीके साथ ही बगलमें छिपाकर एक मणिमय बहुमूल्य हार भी ले आये थे, उसे गलेमें पहना दिया। व्रजेश्वरके कंधेपर लटकती हुई चादरमें पीठकी तरफ एक पोट-सी बँधी है। उन्होंने अपनी वह चादर उतारी, अतिशय शीघ्रतासे पोटको

छिपाते हुए उसे दूतकी कमरमें लपेटने लगे; तीन-चार तहकी लपेट आ जानेपर भी उसके अन्तरालसे रत्नराशि चमक ही उठी, मानो वह झाँककर अपने ग्रहीता स्वामीका मुख देख रही हो। अन्तमें व्रजेन्द्रने अपनी हीरक-मुद्रिका उतारकर दूतकी अँगुलीमें पहनाकर, फिर उसे हृदयसे लगाकर बोले—'चलो, भोजनागारमें चलकर भोजन कर लो।' भोजनके पश्चात् उसे विश्राम कराकर स्वयं सूतिकागारके पार्श्ववर्ती गृहमें एक पर्यङ्कपर आ विराजते हैं। पर आँखोंमें निद्रा नहीं! और तो क्या, आठ पहरसे दौड़ते रहनेपर भी शरीरमें थकानका लेशमात्रतक नहीं है। हो कैसे! उनके अन्तर्हृदयमें अपने नवजात शिशुके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी, उसके मधुरातिमधुर मुखमण्डलकी क्रम-क्रमसे स्मृति हो रही है। प्रत्येक स्मृति अपने साथ एक चिन्मय अमृतरसस्रोत लिये आती है; प्रत्येक स्रोत व्रजेशके मन, इन्द्रिय एवं प्राणोंमें नवीन स्फूर्तिका संचार कर देता है। वे, भला, थकें तो कैसे थकें!

सूतिकागारमें भी किसीकी आँखोंमें नींद नहीं। अबसे तीस घड़ी पूर्व शिशु भूमिष्ठ हुआ है। तबसे व्रजरानी निरन्तर उसके वदनारविन्दका मधुपान कर रही हैं। पर न तो नेत्र थके, न तृप्त ही हुए; बल्कि जितना देखती हैं, उतना ही दर्शनकी प्यास उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अङ्गोंकी ओर देखती हैं तो प्रतीत होता है, मानो समस्त अङ्ग नीलमणिसे ही निर्मित हों; अधरोंकी ओर दृष्टि ले जाती हैं तो दीखता है मानो इनका निर्माण रक्तरागमणिसे ही हुआ हो; करतल, चरणतल निहारती हैं तो अनुभव होता है, मानो ये पद्मरागमणिसे बने हों। नखावलीका दर्शन करनेपर यह भान होता है, मानो पक्व दाडिमबीजकी आभावाले माणिक्यसे ही इन नखोंकी रचना हुई हो। देखते-देखते व्रजेन्द्रगेहिनी कल्पनाके सुमधुर राज्यमें भ्रमित-सी हो जाती हैं। सोचने लगती हैं, तो क्या यह बालक मणिमय है? न, यह तो सम्भव नहीं; मणि तो कठोर होती है, शिशु तो अत्यन्त मृदु—अत्यन्त सुकुमार है। तब क्या विधाताने या किसीने पुष्पोंसे इसकी रचना की है? ओह! मानो नीलपद्मोंसे समस्त अवयवोंका, बन्धूकपुष्पोंसे अधरोष्ठका, जपाकुसुमोंसे कर-चरण-तलका, मल्लिकाकोरकोंसे ही नखराशिका निर्माण हुआ हो—

नीलमणिनेव सकलावयवानां कुरुविन्देनेव बिम्बाधरस्य कमलरागेणेव पाणिपादस्य शिखर-मणिनेव नखरनिकरस्य निर्माणमिति मत्वा कदाचिन्मणिमयोऽयमिति वा, इन्दीवरेणेव सकला-वयवस्य बन्धूकेनेव बिम्बाधरोष्ठस्य जपाकुसुमेनेव पाणिपादस्य मल्लीकोरकेणेव नखरनिकरस्येति कदाचिदयं कुसुममयो वा केनापि निरमायि।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

इस प्रकार व्रजेश्वरी शिशुके सौन्दर्यकी उपमा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हार जाती हैं।

गोपाङ्गनाओंकी अभ्यर्थना सम्पन्नकर श्रीरोहिणी भी अब व्रजरानीके पास आ गयी हैं, उनके नेत्रोंमें भी आलस्यकी छायातक नहीं है। धात्री भी नींदको मानो सर्वथा भूल गयी है। केवल नन्दपुत्र अपनी जननी यशोदाके वक्षःस्थलपर आँखें बंद किये सो रहे हैं। उनकी एवं व्रजरानीकी ओर देखती हुई धात्री धीमे-धीमे, पर अतिशय मधुर कण्ठसे गा रही है—

धन्य जसोदा भाग तिहारौ, जिन ऐसौ सुत जायौ हो।
जाके दरस-परस सुख उपजत, कुल कौ तिमिर नसायौ हो॥

षष्ठी देवीका पूजन

व्रजेन्द्रनन्दनके अभिनव सुन्दर मुखकमलका प्रत्यक्ष दर्शन करके गोपाङ्गनाएँ, गोपकुमारिकाएँ कृतार्थ हो चुकी हैं, निहाल हो गयी हैं। पर अभीतक व्रजपुरके गोपोंको यह परम सौभाग्य नहीं मिला है। वे तो अपनी पत्नियोंके, पुत्रियोंके मुखसे नन्दशिशुके अद्भुत सौन्दर्यका वर्णन सुनते हैं, सुननेमात्रसे ही परमानन्दसिन्धुमें निमग्न होकर अपनी-अपनी धारणाके अनुसार अपने हृत्पटपर शिशुका चित्राङ्कन करने लग जाते हैं। उनके भावकी तूलिका क्षणमात्रमें ही एक अनन्त असीम अनिर्वचनीय सुन्दर मूर्तिका निर्माण कर देती है तथा उसे देखकर वे इतना तन्मय हो जाते हैं कि कुछ समयके लिये उनका बाह्य ज्ञान सर्वथा लुप्त-सा हो जाता है। गोपबालाएँ अपना अनुभव सुनाती हुई गद्गद कण्ठसे कहती हैं—ओहो! शिशुके अङ्ग इतने स्वच्छ हैं, मानो उत्कृष्ट नवनीलकान्तमणिके अङ्कुर हों; इतने मृदु हैं, मानो तमालतरु-पल्लव हों; इतने स्निग्ध हैं, मानो वर्षणोन्मुख नवजलधरके नवाङ्कुर हों; इतने सुरभित हैं, मानो त्रैलोक्य-लक्ष्मीके भालपर कस्तूरी-तिलक हों; तथा इतने सुचिक्कण, इतने आकर्षणशील हैं, मानो सौभाग्यश्रीके नेत्रोंमें लगा हुआ सिद्धाञ्जन ही अङ्गोंके रूपमें मूर्त हो गया हो—

अङ्कुरमिव नवनीलमणीन्द्रस्य पल्लवमिव तमालस्य कन्दलमिव नवाम्भोदस्य कस्तूरिकातिलकमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः सिद्धाञ्जनमिव सौभाग्यसम्पदः।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

गोपाङ्गनाओंका यह वर्णन मानो सजीव शिशु बनकर गोपोंके हृदय-मन्दिरमें प्रवेश करता है और वे एक अभूतपूर्व आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं। पर साथ ही प्रत्यक्ष दर्शनकी उत्कण्ठा उन्हें क्षण-क्षणमें उत्तरोत्तर चञ्चल बनाती जा रही है। अब तो वे व्याकुल हो गये हैं कि ऐसे विलक्षण, अभूतपूर्व, अश्रुतपूर्व शिशुको शीघ्र-से-शीघ्र प्रत्यक्ष कैसे देखें। आज उनकी उत्कण्ठा चरम सीमाको पहुँच गयी है। इसीलिये आज ज्यों ही, 'व्रजेश्वरीका सूतिकास्नान सानन्द सम्पन्न हो चुका है', यह समाचार व्रजमें प्रसरित हुआ कि—बस, उसी क्षण समस्त गोपमण्डली पुनः नन्दभवनकी ओर दौड़ पड़ी। देखते-ही-देखते व्रजपुरके समस्त गोपोंकी तुमुल आनन्दध्वनिसे नन्दप्रासाद निनादित होने लग गया।

व्रजेन्द्रके मनमें समस्त गोपोंके प्रति समान ममत्व, समान प्रेम है। आजतक जितने समारोह, जितने उत्सव व्रजेशके घर हुए, सबमें व्रजपुरके समस्त गोपोंको उन्होंने समान भावसे सूचना दी। पर आज जब कुलरीतिका अनुसरण करते हुए अपने पुत्रका मुख देखनेके लिये पुरवासियोंके निमन्त्रणका प्रश्न आया तो व्रजेन्द्रने केवल प्रमुख गोपोंको ही निमन्त्रित किया। इस भेदभावमें हेतु था अपने नवजात शिशुकी अनिष्ट-आशङ्का। व्रजराज दूतके मुखसे कंसके पैशाचिक निश्चयको सुन चुके हैं। तबसे उनका चित्त सशङ्कित है—क्या पता, कंस-प्रेरित कोई राक्षस यहाँ आ जाय, गोपोंकी भीड़में मैं उसे पहचान न सकूँ और वह शिशुका अनिष्ट कर दे। इसलिये व्रजेन्द्रने यही उचित समझा कि आज अधिक भीड़ न होने पाये; नारायणकी कृपासे कुछ दिन सानन्द बीत जानेपर समयानुसार समस्त पुरवासियोंको बुलाकर पुत्रका मुख दिखा दिया जायगा, आज केवल प्रमुख गोपबन्धुओंको ही निमन्त्रितकर कुल-मर्यादाका पालन कर लिया जाय। इसी विचारसे विशिष्ट गोप ही निमन्त्रित हुए थे। किंतु ऐसा होनेपर भी, सबको निमन्त्रण न मिलनेपर भी सारा व्रजमण्डल उमड़ ही पड़ा। सचमुच अब निमन्त्रणकी आवश्यकता भी नहीं रही थी, अनिमन्त्रित ही सबका आना अनिवार्य था। भला, सरोवर अपने वक्षःस्थलपर पद्मश्रेणीका विकास हो जानेपर, उन विकसित पद्म-कुसुमोंकी पङ्क्तिसे

गौरवान्वित होनेपर कहीं मधुलुब्ध भ्रमरोंको निमन्त्रित—आह्वान करने जाता है? भ्रमरावली तो बिना बुलाये अपने-आप ही आती है, वह आयेगी ही। नन्दकुल-सरोवरमें भी अनुपम सौरभशाली नील पद्मका विकास हुआ है; उसे अब रसलोभी अलिकुल (गोपकुल)-को आह्वान करनेकी आवश्यकता नहीं है, अलिकुल स्वयं आयेगा—

श्रीमद्गोपनृपेण नूतनतनूजातस्य वीक्षाकृते
प्राग्य्या एव निमन्त्रिता व्रजजनाः सर्वे तु तत्राययुः।
यद्वाम्भोजवनाकरः स्वकुसुमव्रातप्रकाशप्रथा-
व्याप्तः स्यात् किमु तर्हि षट्पदगणानाकारयत्यात्मना॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

नन्दनन्दनको अपनी गोदमें लेकर वृद्धा उपनन्दपत्नी मणिस्तम्भके सहारे बैठी हैं। उनकी दाहिनी ओर घूँघट निकाले व्रजरानी विराजमान हैं। व्रजरानीके अत्यन्त निकट श्रीरोहिणीजी सुशोभित हैं तथा इन्हें तीन ओरसे घेरे हुए व्रजपुरकी कतिपय मान्य वयोवृद्धा गोपिकाएँ बैठी मङ्गल-गान कर रही हैं। अपनी पत्नीके बायें पार्श्वमें उपनन्दजी अतिशय विनम्र मुद्रामें खड़े हैं तथा उनकी बायीं ओर व्रजेन्द्र अञ्जलि बाँधे खड़े अपने बन्धु-बान्धवोंका स्वागत-सत्कार कर रहे हैं। इन सबके सामने, इस स्थानसे लेकर तोरण-द्वारतक ही नहीं, विस्तीर्ण राजपथतक दर्शनार्थी गोपोंकी अपार भीड़ खड़ी है। आगेकी पंक्ति जब दर्शन कर लेती है, किनारे होकर पथ दे देती है, तब पीछेकी पंक्ति आगे बढ़ पाती है। शिशुके अङ्गोंपर जहाँ एक बार गोपोंकी दृष्टि गयी कि वह वहीं स्थिर हो जाती है—हटती नहीं, हटना चाहती ही नहीं। पर पासमें खड़े हुए उपनन्दजी दर्शकके प्रति हाथोंसे पीछेकी अपार भीड़की ओर संकेत कर देते हैं तथा वह अपनी ही तरह अतिशय उत्कण्ठित अन्य दर्शनार्थीको अवकाश देनेके लिये शीलवश बाध्य होकर किनारे हट जाता है। उसने नन्दसुवनको देख लिया, किनारे हटते-हटते बार-बार दृष्टि घुमा-घुमाकर उस सलोने शिशुको देखा; पर आह! तृप्ति बिलकुल ही नहीं हुई, इतनी देर दर्शन करके भी आँखें तो दर्शनकी प्यासी ही लौट आयीं।

लौटते हुए उन दर्शकोंसे पीछेकी पंक्तिवाले कहते हैं—'दादा! तुमने देख लिया? मेरे आगे तो अभी अपार भीड़ खड़ी है। पता नहीं, कबतक मेरी बारी आयेगी। बताओ तो, शिशु कैसा सुन्दर है?' इनके उत्तरमें वे कुछ कहना चाहते हैं; पर उनका कण्ठ भर जाता है, वाणी रुद्ध हो जाती है, वे कुछ भी बोल नहीं पाते। उनकी आँखें भी भर आती हैं। छलकती हुई आँखें मानो संकेतमें उत्तर दे रही हों—'मेरे स्वामीके सखाओ! देखनेवाली तो मैं हूँ, उस अप्रतिम सौन्दर्यको मैंने अवश्य देखा है; पर विधाताने मुझमें बोलनेकी शक्ति नहीं दी, अपनी इसी दीनतापर रोती हुई तुमसे क्षमा चाहती हूँ। वाणीसे सुनकर उस रूपको यथार्थ हृदयङ्गम करनेकी आशा छोड़ दो; वाणीमें तो देखनेकी शक्ति ही नहीं है, वह बेचारी यथार्थ वर्णन कर ही नहीं सकती। जब तुम्हारे दर्शन-गोलकोंकी ओटसे मेरी ही स्वरूपभूता तुम्हारी आँखें देखेंगी, तभी तुम यथार्थमें अनुभव कर सकोगे कि यह नन्दनन्दन कितना सुन्दर है, कितना मधुर, मनोहर है।' गोपगण दर्शनके उपरान्त वस्त्र-आभूषणादि विविध उपहार शिशुके लिये दे रहे हैं। व्रजेन्द्र, भला, इस प्रेमपूर्ण उपहारकी उपेक्षा भी कैसे करते! उन्हें यह उपहारकी वस्तु नहीं प्रतीत हो रही है। वे तो इन वस्तुओंके एक-एक अणुको व्रजवासियोंके मङ्गलमय आशीर्वादसे भरा देख रहे हैं। उन्हें विश्वास है, इन बन्धु-बान्धवोंका आशीर्वाद अव्यर्थ होगा तथा मेरा लाल फूलेगा-फलेगा। इसी भावनासे वे प्रत्येक गोपका उपहार स्वीकार कर ले रहे हैं; इतना ही नहीं, अपनेको उनका चिरऋणी समझ रहे हैं।

मुख देखनेकी लालसासे आये हुए व्रजगोपोंका मनोरथ पूर्ण हुआ। वे गोप घर लौटे। अभी-अभी शिशुका मुख देखकर आये हैं; पर ऐसा अनुभव हो रहा है, मानो उस मधुर-मनोहर मुखको देखे हुए

कितने ही दिन व्यतीत हो गये हैं, फिर चलें, फिर देखें—

आगता निजगृहं यदाप्यमू-
र्नन्दबालमवलोक्य लोभनम्।
हन्त तर्ह्यपि दिनानि कानिचि-
न्मेनिरे दृशि गतं व्रजप्रजाः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

अब सायंकाल हो चुका है। इस समय तपस्विनी भगवती पौर्णमासी यशोदानन्दनको आशीर्वाद देने पधारी हैं। इनके साथ वह परम हँसमुख मधुमङ्गल नामक ब्राह्मणकुमार भी है। देवीका व्रजमें बड़ा आदर है, यद्यपि इनके एवं कुमारके जीवनके सम्बन्धमें व्रजवासियोंको बहुत ही कम परिचय प्राप्त हो सका है; जिस दिन ये व्रजमें पधारीं, उस दिन पूछनेपर इन्हींके मुखसे पुरवासियोंने केवल इतना सुना है—

पौर्णमासीनाम्नी, कात्यायनी च कुमारश्रमणा च पारिव्राज्यक्षिणी चेक्षिणिका चास्मि। अयं च मधुमङ्गलनामा स्नातकः श्रीनारदप्रकृतिः। आवां च विद्याविशेषेणैतद्वयस्कावेव सदा विद्यावहे।

(श्रीगोपालचम्पूः)

'मेरा नाम पौर्णमासी है, मैं सदा काषाय वस्त्र धारण करती हूँ, बालब्रह्मचारिणी तपस्विनी हूँ तथा ज्योतिष जाननेवाली हूँ।* और यह बालक स्नातक है, इसका नाम मधुमङ्गल है, इसकी प्रकृति देवर्षि नारदके समान है। एक विशेष विद्याके प्रभावसे हम दोनोंकी आयु सदा एक-सी—इतनी ही बनी रहती है।' इससे अधिक व्रजवासी इनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जान सके हैं, फिर भी सबका इनपर जन्मदात्री माताकी तरह विश्वास हो गया है। इन्होंने ही सर्वप्रथम व्रजवासियोंके सामने भविष्यवाणी की थी—

भवतां प्राणकन्दस्य श्रीमन्नन्दस्य जगदानन्दः स खलु नन्दनः सम्भविता। (श्रीगोपालचम्पूः)

'आपके प्राणाधार श्रीमान् नन्दको एक पुत्र होगा तथा वह निश्चय ही जगदानन्दरूप होगा।'

तबसे व्रजवासी इनपर न्यौछावर हो गये हैं। इनके लिये गोपोंने कालिन्दी-तटपर एक पर्णकुटीका निर्माण कर दिया है। ये उसीमें निवास करती हैं।

दिनभर अपार दर्शनार्थियोंका अभिनन्दन समाप्तकर व्रजरानी अपने हृदयधनको वक्षःस्थलसे सटाकर स्तन्यपान करा रही थीं, किंतु भगवती पौर्णमासीपर दृष्टि पड़ते ही वे शीघ्रतासे उठकर खड़ी हो गयीं। अपनी अशुचि-अवस्थाकी स्मृति हो जानेसे तपस्विनीका स्पर्श करनेमें एक बार तो झिझकीं, पर देवीकी अतिशय सौम्य मुद्रा उन्हें बरबस खींच लेती है। व्रजेश्वरी अपना मस्तक झुकाकर उनके चरणोंका स्पर्श करती हैं। इसके पश्चात् सहारेसे धीरे-धीरे अपने उस इन्द्रनीलद्युति शिशुको छातीसे उठाकर चरणोंमें रख देती हैं। देवी वहीं बैठ जाती हैं और अपना दाहिना हाथ यशोदानन्दनके सिरपर रखकर नेत्र बंद कर लेती हैं। इसी समय पासमें खड़ा हुआ मधुमङ्गल पुकार उठता है—'जननि यशोदे! ऊपर देखो, ऊपर। हंस, वृषभ, मयूर, हाथी, रथ, हरिण आदि विविध वाहनोंपर सवार चित्र-विचित्र आकृतिवाले कितने लोग तुम्हारे पुत्रका मुख देख रहे हैं! ये एक बार पहले भी आये थे। व्रजके आकाशमें उड़ते हुए मैं कल भी इन्हें देख चुका हूँ।'

ब्राह्मणकुमारकी बातसे आश्चर्य और भयसे युक्त होकर व्रजरानी तथा अन्य गोपिकाएँ ऊपरकी ओर देखने लगीं। पर उन्हें कुछ भी नहीं दीखा। भगवती पौर्णमासी आँखें खोलकर मुसकराने लगीं तथा भयभीत नन्दरानीको आश्वासन देकर बोलीं—'भयकी कोई बात नहीं है। अन्तरिक्षमें देवताओंका निवास रहता ही है।

---

* अनन्तशक्तिमान् भगवान्‌की अघटघटनापटीयसी योगमाया शक्ति ही देवी पौर्णमासीके रूपमें मूर्त होकर व्रजमें निवास करती हैं।

हठात् दिव्यदृष्टिका उन्मेष हो जानेसे मधुमङ्गलने उन्हें देख लिया है।' यह कहकर आशीर्वाद देती हुई देवी पौर्णमासी अपनी पर्णकुटीकी ओर चल पड़ीं।

व्रजमें आज भी रातभर उत्सव होता रहा। अब व्रजेन्द्रनन्दनके जन्मका तृतीय उत्सवमय प्रभात हुआ। फिर चार पहर बाद नृत्य-गीतमयी तृतीय संध्या आयी। इसी तरह व्रजवासियोंके आनन्द-कोलाहलपर अपनी प्रफुल्ल किरणोंकी वर्षा करने भगवान् अंशुमाली चतुर्थ, पञ्चम एवं षष्ठ दिवस भी आये और चले गये। अब छठी रात्रिमें व्रजेन्द्र अपने पुत्रकी मङ्गलकामनासे सूतिका-षष्ठीकी पूजा करने बैठे हैं।

षष्ठी देवीकी अतिशय सुन्दर, गोमयकी प्रतिमा बनायी गयी। शुक्लतन्दुलमयी वेदिकापर प्रतिमाको पधराकर विधिपूर्वक कलशस्थापनादि करके षोडशोपचारसे व्रजेन्द्रने पूजा की। फिर कुलप्रथाके अनुसार व्रजरानीने अपने लालकी छठी पूजी—

गोद लिऐं गोपाल जसोदा पूजत छठी मुदित मन प्यारी।
बढ़ऐ बार-सनेह चुचाते चूँबत मुख दै-दै चुचुकारी॥

× × ×

पूजत छठी जु कान्ह कुँवर की थापे पीत लगाई।
कंचर-थार लिऐं व्रजबनिता रोचन देत सुहाई॥

× × ×

आँजति आँखि जु सबहि सुबासिन, माँगत नैन भराए।
सूरदास-प्रभु तुम चिरजीयौ, घर-घर मंगल गाए॥

व्रजरानी छठी पूजकर मोतियोंके चौकसे अभी उठ भी नहीं पायी थीं कि उनके पुत्रकी छठी पूजनेवालोंका ताँता बँध गया—

फिरि-फिरि ग्वाल-गोप सब पूजत, अरु पूजत ब्रजनारी।
श्रीबिट्ठल गिरिधर चिरजीवौ, माँगत ओलि पसारी॥

रात्रि-जागरणका तो आज शास्त्रीय विधान ही है। नहीं भी होता तो भी व्रजराजको तो जगना ही है। आज ही नहीं, छः दिन हो गये, उन्हें एक क्षणके लिये भी निद्रा नहीं आयी। यह बात नहीं कि अवसर ही नहीं मिला। दो पहर रात बीतनेपर तो व्रजरानीका, उपनन्द आदिका अतिशय आग्रह होनेके कारण उन्हें विश्रामागारमें जाना ही पड़ता। सूतिकागारके एक पार्श्ववर्ती गृहमें दुग्धधवल सुकोमल शय्यापर वे जाकर लेट जाते। पर लेटते ही मणिमय भित्तिका व्यवधान बीचसे अन्तर्हित हो जाता; व्रजराज वहीं लेटे-लेटे देखने लगते—व्रजरानीके वक्षःस्थलपर नीलद्युति शिशु विश्राम कर रहा है। ओह! व्रजेश्वरीका शरीर तो मानो अपराजिता लता हो और शिशु उसका सुन्दरतम विकसित प्रसून। व्रजराजकी वृत्ति उस चिन्मय प्रसूनमें ही लय हो जाती, माया (निद्रा)-में नहीं।

व्रजेशकी मथुरा-यात्रा

अभी रात्रि दो घड़ी अवशिष्ट है, पर अभीसे व्रजेन्द्रके मथुरागमनकी तैयारी प्रारम्भ हो गयी है। व्रजेन्द्रकी भी अनिच्छा है, व्रजरानी भी नहीं चाहतीं; फिर भी जाना आवश्यक है, राक्षस कंसको संतुष्ट जो करना है। अतः कंसके लिये उपहार-सम्भार, रत्नराशि शकटों (छकड़ों)-में भरी जा रही है; भर जानेपर शकटोंको खींच-खींचकर गोप राजपथपर एक पंक्तिमें सजा रहे हैं। व्रजेश्वर अतिशय बलिष्ठ गोपोंको बुलाते हैं। अपने हाथोंसे सबकी पीठ ठोककर उनके हाथोंमें शस्त्र देते हैं तथा समय एवं स्थानका निर्देश करते हैं कि अमुक गोप इस समयसे इस समयतक अमुक स्थानपर सावधान होकर पहरा देता रहे। बड़ी तत्परतासे प्रत्येक गोपको अलग-अलग कुछ गुप्त परामर्श देते हैं। इतनी तत्परता इसीलिये है कि उनकी अनुपस्थितिमें कंसप्रेरित कोई विपत्ति उनके पुत्रपर न आ जाय। इस आशङ्कासे ही व्रजेश्वरको समस्त गोकुलकी पूर्ण रक्षाकी पूरी व्यवस्था करके तब कंसका वार्षिक कर चुकाने मथुरा जाना है—

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह॥

(श्रीमद्भा० १०। ५। १९)

एक पहर दिन चढ़नेतक कहीं सारी तैयारी हो सकी। पर जानेके पूर्व व्रजराज कुछ चिन्तित हो गये—'अत्यन्त नृशंस कंसके समक्ष जा रहा हूँ; पता नहीं क्या परिणाम होगा। मैं अपने इस शिशुका मुख देखने लौट सकूँगा कि नहीं·····! जो हो, जी भरकर इसे देख तो लूँ, यह पाथेय तो साथ ले लूँ।'

व्रजराज दौड़कर सूतिकागारमें जा पहुँचते हैं। व्रजरानी शिशुको उनकी गोदमें रख देती हैं। वे बार-बार शिशुके चन्द्रमुखकी ओर देखने लगे, बड़ी देरतक दर्शन-सुख लेते रहे; फिर सिरसे कपोलतक बार-बार चूमकर शिशुके श्याम कलेवरको हृदयसे सटा लिया! व्रजेश आये थे तृप्त होने, पर व्याकुलता तो और बढ़ गयी!

पासमें धात्री खड़ी थी। पिताकी गोदमें विराजित शिशुकी ओर लक्ष्य करके वह बोली—'मेरे वत्स! मेरे साँवरे! देख, तेरे पिता मथुरा जानेके लिये तेरी आज्ञा चाहते हैं। तू आज्ञा दे दे।' धात्रीका यह कहना था कि एक अतिशय आश्चर्यमय अनुपम बाल्यभङ्गिमा श्याम शिशुके मुखपर नाच उठी तथा उस भङ्गिमाके आवेशसे ही उसके अरुणिम होठोंपर एक मन्द मुसकान छा गयी। गोपेशने उसे स्पष्ट देखा। ओह! इस मुसकानने तो उनकी चिरस्थिर बुद्धिको भी चञ्चल बना डाला! पुनः स्थिर करनेका अवकाश भी नहीं, स्थिर होनेकी आशा भी नहीं, वे इस चञ्चलताको लिये ही मथुराकी ओर चल पड़े—

वत्स! श्याम! पिता तवायमयितुं राज्ञः पुरं त्वत्कृता-
नुज्ञां प्रार्थयते ततो वितरतादित्येष धात्रीरितः।
आश्चर्यातुलबालभाववलनाद्वक्त्रे स्मितं तेन च
श्रीमान् गोपजनाधिपः प्रचितधीः प्रस्थानमासेदिवान्॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

गोपमण्डली शकटसमूहके संचालनमें लगी है। पर व्रजेन्द्रका ध्यान इस ओर सर्वथा नहीं है। उनकी आँखें तो श्याम शिशुको देख रही हैं तथा कान अन्य ग्रामसे आयी हुई, दही बेचकर लौटती हुई कुछ गोपियोंकी चर्चा सुन रहे हैं। एक गोपी कह रही है—

सोभा-सिंधु न अनत रही री।
नंदभवन भरपूरि उमगि चलि, ब्रज की बीथनि फिरति बही री॥
देखी जाइ आज गोकुल में घर-घर बेचत फिरत दही री।
काहूँ लगि काहूँ बनाय बहुत बिधि, कहत न मुख सेसहु निबही री॥
जसुमति उदर अगाध उदधि तें उपजी ऐसी सबन कही री।
सूरदास-प्रभु इंद्रनील-मनि ब्रजबनिता उर लाइ गुही री॥

पूतना-मोक्ष तथा पूतनाके अतीत जन्मकी कथा

आश्लेषा नक्षत्र है, विषघटिकाकी वेला आ गयी, मृत्युयोगका भी संयोग हो गया। इतनेमें ही असुरबलवर्द्धिनी निशा भी आ पहुँची। इसीसे निशाचरी पूतनाको यह अनुभव हुआ मानो उसकी भुजाओंमें शत-सहस्र गिरिशृङ्गोंको तोड़कर, एक साथ लेकर उड़ जानेकी शक्ति संचारित हो गयी हो। वह इस आवेशमें ही उड़ चली, उड़कर व्रजपुरके तरु-वल्लरी-सुशोभित उपवनमें जा पहुँची।

राक्षसीने एक बार विस्फारित नेत्रोंसे व्रजेन्द्रकी पुरीको, अगणित मणिदीपोंके उज्ज्वल निर्मल प्रकाशमें चम-चम करते हुए धवल आवासगृहोंको देखा। उसे अतिशय आश्चर्य है कि आज सात दिनतक यह नन्दव्रज उसकी कराल दृष्टिसे बचा कैसे रह गया। अबतक वह नगर-ग्राम-गोष्ठोंमें घूमती हुई अपने विषमय स्तनका पान कराकर सहस्रों शिशुओंका प्राण अपहरण कर चुकी है, यह प्राणहरणका खेल खेलती हुई प्रतिदिन ही अनेकों बार इस उपवनकी सीमातक आ पहुँची है; पर एक बार भी नन्दव्रजकी ओर उसका ध्यान क्यों नहीं आकर्षित हुआ? इतना ही नहीं, वह सुन भी चुकी है कि जिस क्षण आकाशचारिणी उन अष्टभुजा देवीने कंसको सावधान किया, उससे कुछ ही पूर्व, उसी रात्रिमें व्रजराज नन्दको एक अतिशय सुन्दर पुत्र हुआ है; और तो क्या, इस पुत्रका प्राण हरण करनेके लिये कंसने विशेषरूपसे आज्ञा भी दी थी। पर इन बातोंको निरन्तर सात दिनतक वह भूली क्यों रही? एक बार भी तो ये बातें उसके स्मृतिपथमें नहीं आयीं। ऐसा हुआ ही क्यों? इन बातोंकी मीमांसा करनेमें राक्षसीने बड़ा प्रयास किया; पर सभी निष्फल, सभी व्यर्थ! वह कारण ढूँढ़ न सकी, ढूँढ़ सकती भी नहीं; क्योंकि शिशुरूपधारी गोलोकविहारी नराकृति परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्‌की अचिन्त्यलीलामहाशक्तिके प्रभावसे ही ये बातें घटित हुई हैं। राक्षसीकी दृष्टि महामहिम भगवान्‌की, उनकी लीलाशक्तिकी योजनाका वास्तविक अनुसन्धान पा ही कैसे सकती है। अबतक उसने अगणित बालकोंकी हत्या अवश्य की है, पर किन बालकोंकी? केवल उन्हींकी, जो नरके आवरणमें क्रूर राक्षस थे, राक्षसकुलकी वृद्धि करने, धराका भार बढ़ानेके लिये कंसपक्षीय राक्षसकुलोंमें उत्पन्न हुए थे। वह अबतक एक भी ऐसे शिशुको स्पर्शतक नहीं कर सकी है, जो भगवदाश्रित कुलमें भक्तकुलकी परम्परा-वृद्धि करने आया है। लीलाशक्तिकी प्रेरणासे '**कण्टकेनैव कण्टकम्**' की तरह उसके द्वारा तो धराका भार ही हलका हुआ है; किंतु इस रहस्यको वह नहीं जान सकती। तथा अभी वह पूतना यह समझ ही नहीं सकती कि उसी लीलाशक्तिके संचालनमें ही वह आज नन्दगोकुलकी चिन्मय भूमिको स्पर्श करनेमें, उसमें प्रवेश पानेमें समर्थ हो सकी है! अन्यथा, यह नियम है कि असुरोंका—आसुरीशक्तिका प्रवेश तो वहीं सम्भव है, जहाँ भक्तजनपालक श्रीहरिके समस्त विघ्न-बाधाहारी परम मङ्गलमय नामों एवं गुणोंके श्रवण-कीर्तन आदि नहीं होते; हरिनामगुणपरिपूरित देशमें तो आसुरी छायातक नहीं पड़ सकती। यह तो है उनके नाम-गुण आदिकी महिमा। यहाँ इस नन्दगोकुलमें तो वे स्वयं पधारे हुए हैं। गोकुलका अणु-अणु तद्रूप हो चुका है। ऐसे गोकुलमें राक्षसी पूतना आ ही कैसे सकती—

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि॥

(श्रीमद्भा० १०। ६। ३)

पर अब विलम्बका अवसर नहीं। नन्दप्रासाद

मानो पूतनाको अपनी ओर खींच रहा है। वह यातुधानी नन्दनन्दनके प्राणहरणके लिये आतुर हो उठी। उसने व्रजपुरके बहिर्द्वार (नगरफाटक)-की ओर दृष्टि डाली। दीख पड़ा—अत्यन्त बलिष्ठ बहुत-से गोप धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाये, बाण हाथमें लिये प्रहरीका कार्य कर रहे हैं। वे अतिशय सजग हैं। उनके मुखपर एक अद्भुत तेज है। ऐसे विलक्षण मानवी तेजका दर्शन राक्षसीने पहली बार किया; वह आज जीवनमें प्रथम बार ही हतप्रभ हुई, मानो एक ही क्षणमें उसके विकराल विशाल अवयवोंकी शक्ति किसीने हर ली हो। वह विचारमें पड़ जाती है—ऐसे भयंकर शरीरको लिये हुए इन प्रहरियोंके बीचसे सकुशल व्रजप्रवेश कदापि सम्भव नहीं, दृष्टिपथमें आते ही उनके तीक्ष्ण बाण उसे धराशायिनी बना ही देंगे। अन्तरिक्षके पथसे भी जाना सम्भव नहीं। यहाँतक तो आ गयी, पर आगे इस पथसे भी बढ़ना अत्यन्त भयावह है; क्योंकि आज एक नयी आश्चर्यमयी बात हो रही है। अन्तरिक्षमें रहनेपर भी उसके शरीरकी भयंकर आकृति व्रजपुरके निर्मल भूभागपर सर्वथा स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो जाती है तथा इस छायाके सहारे ही मन्त्रपूत बाणोंसे उसका विद्ध हो जाना अनिवार्य है। इस उधेड़-बुनमें पथ न पाकर मायाविनीने मायाधिष्ठात्रीका स्मरण किया। बस, स्मरण करते ही उद्देश्य सिद्ध हो गया; क्योंकि मायाधिष्ठात्री व्रजेन्द्रनन्दनकी अचिन्त्यलीलामहाशक्ति योगमायाकी एक आवरिका शक्ति हैं। यातुधानीने प्रकारान्तरसे लीला-शक्तिका ही आवाहन कर लिया।

मायाविनीकी माया जाग्रत् हो उठी। दूसरे ही क्षण उसके भयानक अवयव एक अतिशय मनोहर सुन्दर षोडशवर्षीया रमणीके रूपमें परिणत हो गये, शरीरसे सौन्दर्यका स्रोत झरने लगा। मानो उर्वशी, अलम्बुषा, रम्भा, घृताची, मेनका, प्रम्लोचा, चित्रलेखा, तिलोत्तमा—इन सुरपुरवासिनी अप्सराओंका समस्त सौन्दर्य एकत्र होकर पूतनाके इस शरीरमें आ गया हो, इतना निराला सुन्दर रूप प्रकाशित हुआ! ऐसे मोहन रूपसे सुसज्जित होकर वह पुरके बहिर्द्वारपर आ जाती है। गोपप्रहरीगण चित्रलिखे-से शान्त-स्थिर देखते ही रह जाते हैं और वह नन्दभवनकी ओर चल पड़ती है। वे प्रहरी कल्पना-राज्यमें जाकर सोचने लगते हैं—

किमियं मूर्तेव व्रजपुरदेवता, किमियं त्रैलोक्य-लक्ष्मीः, किमियमनम्बुधरा तडिन्मञ्जरी, किमियं निष्कुमुदवान्धवा कौमुदीति। (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

'क्या यह रमणी दुष्प्रधर्ष व्रजपुर-देवताका ही मूर्त्तरूप है? अथवा स्वयं शोभामयी त्रैलोक्यलक्ष्मी ही हैं? जलधरविहीन गौरवर्णा विद्युल्लताएँ ही घन होकर इस रूपमें आयी हैं क्या? किंवा चन्द्रविरहित सुशीतल चन्द्रिका ही रमणी बनकर आ गयी है?'

नन्दभवनकी ओर जाती हुई पूतनाको गोपाङ्गनाओंने भी देखा—उसकी लहराती हुई सुन्दर वेणीमें मल्लिकापुष्प गुम्फित हैं, बृहत् नितम्बभार एवं वक्षःस्थलके कारण रमणी कृशोदरी है, सुन्दर वस्त्रसे उसके समस्त अङ्ग आच्छादित हैं, हिलते हुए कर्णकुण्डलोंकी आभासे केशराशि दमक रही है, ऐसी दमकती हुई कुन्तलराशिसे उसका मुख अलंकृत है; होठोंपर रम्य मन्द मुसकान है, स्मितसमन्वित वक्र कटाक्षविक्षेपसे व्रजवासियोंका मन हरण-सा करती हुई एक हाथसे कमलपुष्प घुमाती हुई वह मन्थर गतिसे चली जा रही है। गोपियोंने समझा—आश्रय ढूँढ़ती हुई सम्पदधिष्ठात्री श्री स्वयं आयी हैं; व्रजेशतनयको सर्वोत्तम आश्रय (पति—रक्षक) जानकर उन्हें देखने आयी हैं, वरण करने आयी हैं—

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां
बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम्।
सुवाससं कल्पितकर्णभूषण-
त्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम्॥
वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितै-
र्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम्।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं
गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ६। ५-६)

इस प्रकार सभी विमुग्ध हो गये; किसीने उसे नहीं

रोका। निर्बाध वह वहाँ जा पहुँचती है, जहाँ व्रजरानी शिशुको लाड़ लड़ा रही हैं—

बैठी हुती जसोदा मंदिर, हुलरावति सुत स्याम कन्हाई।
प्रगट भई तहँ आइ पूतना, प्रेरित काल, अवधि निसराई॥

आज दिनमें व्रजरानीने अपने शिशुका पलना-झूलन उत्सव किया था—

कनक रतन मनि पालनौ गढ़्यौ काम-सुतहार।
बिबिध खिलौना भाँति के, गजमुक्ता चहुँ धार॥
जननि उबटि अन्हवाय कैं, अति क्रम सौं लए गोद।
पौढ़ाए पटपालने सिसु निरखि-निरखि मन मोद॥
अति कोमल दिन सात के, अधर-चरन-कर लाल।
सूर स्याम छबि अरुनता निरखि हरष ब्रजबाल॥

तथा अभी भी वे रोहिणी एवं अन्य गोपियोंके साथ बैठी हुई शिशुको उसी पालनेपर लिटाकर मुख चूम-चूमकर गीत गा रही हैं। राक्षसी उनसे कुछ दूरपर खड़ी हो जाती है। किसी अज्ञात प्रेरणासे नन्दरानीकी दृष्टि उस ओर आकर्षित होती है। हठात् एक अतिशय सुन्दरी दिव्य रमणीको देखकर वे चौंक पड़ती हैं, बरबस उठ पड़ती हैं, अभ्यर्थना करने लग जाती हैं—

आवति पीठ बैठनौ दीनौ, कुसल पूँछि अति निकट बुलाई।

पूतनाके मुखपर एक पैशाचिक उल्लास छा जाता है तथा वह मधुमिश्रित स्वरमें अपना परिचय देने लगती है—

मथुरावासिनी गोप्यः साम्प्रतं विप्रकामिनी।
श्रुतं वाचिकधवक्त्रेण तत्त्वं मङ्गलसूचकम्॥
बभूव स्थविरे काले नन्दपुत्रो महानिति।
श्रुत्वाऽऽगताहं तं द्रष्टुमाशिषं कर्तुमीप्सिताम्॥
(ब्रह्म० वै० कृष्णजन्मखण्ड अ० १०)

"गोपिकाओ! मैं मथुरावासिनी ब्राह्मण-पत्नी हूँ। अभी संदेशवाहकोंके मुखसे परम मङ्गल-सूचक समाचार सुन पायी कि नन्दरायको इस वृद्ध वयसमें सर्वसुलक्षणसम्पन्न पुत्र हुआ है; बस, यह सुनते ही मैं उसे देखने और अभिलषित आशीर्वाद करने चली आयी।"

व्रजेन्द्रगेहिनी एकटक उसकी ओर देखती रहती हैं। वह कहती ही चली जाती है—'व्रजरानी! सुनो, एक और भी रहस्यकी बात है। मेरे इन सर्वमङ्गलदायी स्तनोंसे निरन्तर अमृत झरता है, जिसके पीनेसे तुम्हारे शिशुका शरीर अमर हो जायगा। अतः मैं तुम्हारे बच्चेकी सर्वसुखदायिनी धाय बनकर यह अमृतमय दूध भी उसे पिला दूँगी—

मम च स्तनौ सर्वश्रेयस्तननौ नित्यममृतं क्षरतः, येन पीतेन सोऽयं निस्संदेहसिद्धदेहः स्यात्। तस्मादहमस्य सर्वसुखविधात्री धात्री च भविष्यामि। (श्रीगोपालचम्पूः)

निशाचरी यशोदानन्दनकी ओर बढ़ने लगी। वे निमीलित-नेत्र होकर पालनेपर पड़े हैं। उनके नेत्र तो उसी क्षण बंद हो चुके थे, जिस क्षण राक्षसीने नन्दालयमें पाँव रखे। नेत्र बंद क्यों हुए? परब्रह्मकी यह योगीन्द्र-मुनीन्द्र-मनोहारिणी लीला देखते हुए अन्तरिक्षमें अवस्थित ऐश्वर्यप्रवण भावुक भक्त भावनाके राज्यमें जाकर इसकी कल्पना करने लगते हैं—सम्भवतः बाल्यलीलाधारी श्रीहरिने शिशुसुलभ भङ्गिमाका अनुकरण करते हुए ही ऐसा किया है; अथवा ऐसी दुष्टाका मुख देखना उन्हें अभिप्रेत न हुआ, इसीसे उनके नेत्रकमल सम्पुटित हो गये। यह भी कारण हो सकता है कि अनन्त अप्राकृत सद्गुण-निकेतन व्रजेन्द्रनन्दन अतिशय लज्जाका अनुभव कर रहे हैं। उन्हें संकोच हो रहा है—'आह! इसके प्राण हरण करने पड़ेंगे।' लीलाशक्ति कह रही हैं—'स्वामिन्! समय आ गया है, इसका कलेवर बदल दो।' सर्वज्ञताशक्ति कह रही हैं—'नाथ! संकोच क्यों? तुम तो इसका बीभत्स आवरण उतारकर, परम सुन्दर अचिन्त्य अप्राकृत चिन्मय मातृदेह इसे दे रहे हो, अनन्त हित कर रहे हो।' पर व्रजेन्द्रनन्दनमें तो धृष्टताका अत्यन्त अभाव है, परम हितके लिये भी प्राणहनन-जैसे कठोर कर्ममें उनकी अभिरुचि क्यों होने लगी। वे सोच रहे हैं—तारा, पर मारकर ही तो! इस ग्लानिसे ही मानो श्यामसुन्दरकी श्याम पुतली पलकोंकी ओटमें जा छिपी। अथवा गोलोकविहारीने निश्चय तो कर लिया—इसे अपनी जननी बनाऊँगा; प्राणघातिनी बनकर आयी

है, पर मैं इसे प्राणधारिणी बना लूँगा; क्योंकि मेरे पास आयी है। पर आह! इसकी देह बदलते समय तो इसे अतिशय पीड़ा होगी ही। मरणकालीन यन्त्रणासे छटपट करती हुई इसकी विकल दशा मैं नेत्रोंसे देखूँ? नहीं, कभी नहीं देखूँगा। मानो इस कोमल भावनाने ही उनके नेत्र बंद कर दिये। यह भी सम्भव है कि पूतनाका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये ही उन्होंने आँखें मूँद ली हैं। यह स्तन्यपान करानेकी इच्छासे आयी है, बीभत्स अङ्गोंको इतने मनोहर कलेवरमें मायासे छिपाकर सामने हुई है। यदि यशोदानन्दनके नेत्र खुले रहते तो मायाविनीकी माया तत्क्षण नष्ट हो जाती; उसका विकराल शरीर नन्दरानीको उसी समय दीख जाता। वे अपने हृदयधनको छातीमें छिपाकर उसी समय मूर्छित हो जातीं। धनुर्धर गोपों एवं राक्षसीमें युद्ध छिड़ जाता। सारी व्यवस्था बदल जाती। स्तन्यपान करानेका मनोरथ अपूर्ण रह जाता। इसीलिये नेत्रोंको उन्होंने आच्छादित कर लिया है। अथवा सर्वथा दूसरा ही कारण है—ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रभु इधरसे—पूतनाकी ओरसे दृष्टि समेटकर अन्तरकी ओर चले गये हैं। सर्वज्ञ स्वामीने अपने उदरमें अवस्थित अनन्त लोकोंकी आकुलता जान ली है। दीनबन्धुने देखा, इस क्षण मेरे उदरमें स्थित सभी प्राणी व्याकुल हैं। प्राणी सोच रहे हैं—'यह राक्षसी स्तन्यपान करानेके बहाने हालाहल कालकूट विष पिलाने आयी है, इस मलिन गूढ़ अभिसंधिको लेकर ही यह सामने खड़ी है; और यदि प्रभुने भी विषपान कर लिया, विषको उदरस्थ कर लिया, तो उस दुस्सह विषके सम्पर्कसे हमलोगोंकी क्या दशा होगी? हमलोगोंका तो सर्वनाश हो जायगा।' इस विचारसे वे अतिशय व्यथित हैं। इसीलिये मानो सर्वेश्वर, सर्वलोकमहेश्वरने उन व्याकुल प्राणियोंको अभय प्रदान करने, अन्तर्देशमें जाकर 'डरो मत, विषसे निर्भय रहो; मैं पीऊँगा, फिर भी विषकी ज्वाला तुम्हें स्पर्शतक न कर सकेगी' इस प्रकार अभयवाणी सुनानेके लिये ही अपने नेत्र बंद कर लिये हैं—इधरसे दृष्टि हटा ली है—

दातुं स्तन्यमिषाद् विषं किल धृतोद्योगेयमास्ते यतः
पीतं चेत् प्रभुणा पुरो बत गतिः का वास्मदीया भवेत्।
इत्थं व्याकुलितान् निजोदरगतानालोक्य लोकान् प्रभु-
र्वक्तुं भात्यभयप्रदानवचनं चक्रेऽक्षिसम्मीलनम्॥

(श्रीहरिसूरिविरचितभक्तिरसायनम्)

कुछ भी कारण हो, व्रजेन्द्रनन्दनके अञ्जन-अङ्कित निमीलित नेत्रोंकी शोभा तो देखते ही बनती है—मानो नीलकमल-कोरकोंकी सम्पुटित अग्रिम पंखुड़ीपर दो मधुमत्त भ्रमर विश्राम कर रहे हों।

व्रजरानी, रोहिणी एवं अन्य गोपियोंके देखते-ही-देखते वह राक्षसी यशोदानन्दनको गोदमें उठा लेती है तथा अतिशय वात्सल्यपूर्ण प्रेमपूरित हावभावका प्रदर्शन करके कञ्चुकीको अपसारित करती हुई उनके लाल-लाल होठोंपर दुर्जर विषसंसिक्त स्तनाग्र रख देती है। शिशु यशोदानन्दन चुक्-चुक् शब्द करते हुए दूध पीना आरम्भ करते हैं। पर वे केवल दूध ही नहीं पीते, दूधके साथ-साथ यातुधानीके मलिन प्राणोंको भी पीने लग जाते हैं। दो-ही-चार क्षणोंमें पूतनाके समस्त मर्मस्थानोंमें अतिशय पीड़ा होने लगती है। वह 'छोड़, अरे! छोड़-छोड़' कहती हुई बालकको वक्षःस्थलसे उठाकर अलग दूर फेंक देना चाहती है; पर उसने तो स्तनोंको हाथोंसे अत्यन्त दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया है। राक्षसीने अपना सारा बल लगा दिया, तो भी हाथ तो छूटते नहीं! इधर प्राणधमनी प्राणशून्य होती जा रही है। अब तो मर्मान्तक व्यथासे वह हाथ-पैर पटकने लगती है, बार-बार भयंकर चीत्कार करने लगती है; पर यशोदानन्दन तो दूध पीना नहीं ही छोड़ते। इतनी ललकसे पी रहे हैं, मानो दूध नहीं—अमृतकी धारा हो। वास्तवमें ही अब वह विषमय दुग्ध-धारा नहीं रही है, उनके बन्धूकपुष्पकी कलिकासदृश अरुणिम अधरपुटोंका संस्पर्श पाकर अमृत-धारा बन चुकी है। सुरसरि गङ्गाका पावन प्रवाह जैसे सुकृतनाशिनी कर्मनाशाकी जलधाराको खींच लेता है, खींचकर अपनेमें मिलाकर अपना रूप दे देता है, ऐसी मलिन धारा भी पवित्रतम बन जाती है, वैसे ही यह

पूतनास्तननिर्गत विषधारा भी अत्यन्त पूत, पीयूषमयी बन गयी है—

कृष्णेन पूतनास्तन्यपानमित्थं विरोचते।
यथा गङ्गाप्रवाहेण कर्मनाशाजलाहुतिः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

यशोदानन्दनको वक्षःस्थलपर लटकाये पूतना विद्युत्-गतिसे आँगनमें चली आती है। सारे अङ्ग पसीनेसे भींग गये, अब आँखें भी उलट गयी हैं। इसी अवस्थामें, मानो किसीने हाथसे उठाकर उसे ऊँचे आकाशमें फेंक दिया हो, इस तरह वह मायाविनी ऊपर उड़ने लगती है। असह्य वेदनाके कारण ज्ञान खो बैठती है, माया भूल जाती है। बस, वह मोहन सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। उसके स्थानपर अत्यन्त विकराल, विशाल उलूकी-शरीर प्रकट हो जाता है। भयंकर गर्जना करती हुई वह मथुराकी ओर उड़ चली। आह! जिस क्षण नन्दनन्दनको अपने हृदयपर रखकर वह राक्षसी उड़ी, उसी क्षण रोहिणी एवं नन्दगेहिनीके प्राण भी मानो उनके फटे हुए हृदयकमलसे निकलकर उसकी अपेक्षा भी द्रुतगतिसे उड़ चले—

उड्डिड्ये सपदि यदा तु पक्षिणी सा
तं बालं हृदि परिगृह्य लम्बमानम्।
उड्डीना द्रुततरमेव मातृयुग्म-
प्राणाश्च स्फुटितहृदम्बुजादिवासन्॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

मर्मान्तक पीड़ासे व्यथित होकर जिस समय पूतना भयंकर चीत्कार करने लगी, उस समय अगणित भूधरोंके साथ पृथ्वी कम्पित हो उठी, ग्रहचक्रके सहित अन्तरिक्ष स्पन्दित हो गया, सप्तपाताल एवं दिशाएँ निनादित हो उठीं, बहुत-से प्राणी वज्रपातकी आशङ्कासे पृथ्वीपर गिर पड़े। ऐसा यह दिग्दिगन्तव्यापी गर्जन था। अब उड़ते समय भी ऐसी ध्वनि हो रही है, मानो व्रजपुरका आकाश अतिशय प्रबल झंझावातसे आक्रान्त हो गया हो। पूतना क्षणोंमें ही गोपप्रासादोंकी सीमा पार कर जाती है, उपवनको भी लाँघ जाती है। अब आगे कंसराजका छः कोसतक फैला हुआ एक अतिशय सुरम्य उद्यान है, जहाँ आम्र-पनस आदिके अगणित वृक्ष शोभासे गर्वित हुए सिर उठाये खड़े हैं। इससे पूर्व राक्षसी बहुत ऊँचेपर उड़ रही थी; पर जैसे ही इस उद्यानका आकाश आया कि उसका विशाल शरीर भी नीचे उतर आया। नहीं-नहीं, व्रजेन्द्रनन्दनकी अचिन्त्य लीलाशक्तिने उसे नीचे ढकेल दिया। अबतक वे उसे ऊपर उठाये हुए थीं, अब नीचे गिरा देती हैं। अब वह वृक्षोंको छूती हुई उड़ने लगती है। एक तो अतिशय विशालकाया है, दूसरे विशाल पक्षोंको विस्तारितकर फट्-फट् करती हुई वह उड़ रही है। तीसरे प्राणान्तकालीन वेदनासे तड़पती रहनेके कारण उड़नेका वेग अत्यन्त प्रबल हो उठा है। इसीलिये परिणाम यह होता है कि मनोरम उद्यानकी सारी वृक्षावली उसकी पाँखोंके आघातसे समूल उखड़कर टुकड़े-टुकड़े होने लगती है। छः कोसकी सीमा पार करनेमें राक्षसीको कुछ ही क्षण लगे, पर इतनी ही देरमें उसके पक्षसंचालनकी चोटसे कंसोद्यानका एक-एक वृक्ष चूर्ण-विचूर्ण हो गया। छः कोसके विस्तारका वह उद्यान सहसा वृक्षशून्य हो गया।

राक्षसी व्रजकी तो किसी एक लता-वल्लरीका भी एक पत्रतक नष्ट न कर सकी, पर उसीके द्वारा कंसकी विशाल वाटिका उजड़ गयी! ऐसा इसीलिये हुआ कि वाटिका असुर कंसकी थी, वाटिकाके वृक्ष भी असुर-भावापन्न थे। इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं। वृक्ष, वृक्ष-शाखा, पुष्प, फल आदिके भी दो विभाग होते हैं। एक वृक्ष वे हैं, जिनकी छायामें ऋषि-आश्रमोंकी, संतकुटीरोंकी प्रतिष्ठा होती है, जिनके आलवाल (गट्टे)-पर बैठकर भावमत्त भक्तमण्डली भगवद्गुणगानका रस लेती है; और दूसरे वे हैं, जिनकी छायामें विषयीकी भोगशालाकी, पापरत धनदुर्मदान्धके विश्रामागारकी रचना होती है, जिनकी वेदीपर बैठकर लम्पटोंकी टोली मदपान करती है। एक वृक्षकी शाखामें भगवान्‌के श्रीविग्रहका हिंडोला झूला जाता है। शाखा सूखनेपर उससे भगवत्-मन्दिरोंके कपाट, पीठ आदिका निर्माण होता है। वह शाखा भगवान्‌के

भोगकी पाकशालामें जलकर भगवद्भोग प्रस्तुत करती है। तथा दूसरी वृक्ष-शाखा वह है, जिसपर वारवनिताएँ झूला झूलती हैं। सूखनेपर वारविलासिनीकी शय्याका निर्माण होता है। वह काष्ठ चाण्डालके घर मांसरन्धनके समय जलता है। एक पुष्प-फल वे हैं, जिनसे भगवत्पूजा सम्पन्न होती है। दूसरे वे हैं, जिनसे विषयीकी इन्द्रिय-तृप्ति होती है। कंसके उद्यानके वृक्ष इस दूसरी कोटिके थे। इनकी छायामें किसी संतने कभी विश्राम नहीं किया, इनके नीचे तो कंसके अनुचर ही सोते थे। वृक्ष-शाखाओंसे कभी भी कोई भी सात्त्विक कार्य सम्पन्न नहीं हुआ, कंसपक्षीय राक्षस ही इनके सूखे काष्ठका उपयोग करते रहे। इस उद्यानका एक फल, एक पुष्प भी कभी भगवत्-सेवामें अर्पित नहीं हुआ। इनके पुष्प तो सदा कंसके गलेकी ही माला बने, कंसपत्नियोंकी वेणीमें पिरोये गये तथा फल उस असुरके तामसी भोजन-थालकी ही शोभा बढ़ाते रहे। अतः उद्यानके वृक्ष सदा पुष्प-फलसमन्वित रहकर भी वस्तुतः अपुष्प, निष्फल ही रहे। इनका अन्त हो जाना ही श्रेयस्कर था; क्योंकि ये असुरसेवी थे। व्रजेन्द्रनन्दनकी अचिन्त्यलीला-महाशक्तिने सोचा—इनके कल्याणका इससे सुन्दर अवसर और नहीं आयेगा; क्योंकि इनका विनाश करनेवाली पूतनाके वक्षःस्थलपर मेरे स्वामी स्वयं नन्दनन्दन विराजित हैं। प्रकारान्तरसे इनका ही स्पर्श ये वृक्ष करेंगे, स्पर्श करके कृतार्थ हो जायँगे। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है; वह यह कि इस राक्षसीके शवसंस्कारके लिये अत्यधिक काष्ठकी आवश्यकता होगी। इतनी शीघ्रतासे इस विशाल शरीरके लिये व्रजवासी पर्याप्त काष्ठ कहाँ पायेंगे? अतः पहलेसे ही काष्ठकी व्यवस्था भी हो जाय—एक पंथ, दो काजकी सिद्धि होगी। इसी संकल्पसे लीलाशक्तिने उसके विशाल शरीरको उद्यानके वृक्षोंपर फेंका तथा पृथ्वीपर 'अब गिरी, तब गिरी' करती हुई राक्षसीने छः कोसतक फैले हुए वृक्षोंको खण्ड-खण्ड करके धराशायी बना डाला। अस्तु,

पर अब तो उसकी शक्ति समाप्त हो चुकी है। साथ ही कंसोद्यानकी दूसरी सीमा भी समाप्त हो गयी है। पूतनाका शरीर निष्प्राण होकर गिर पड़ता है। वहाँ गिरता है, जहाँ निर्जन वनके बीच एक निर्वृक्ष समतल भूमिखण्ड है। यह भूमिखण्ड व्रजेन्द्रके अधीन है। प्रतिदिन प्रातःकाल व्रजकी समस्त गायें इस स्थानपर एकत्र होती हैं। गोप उन्हें दुहते हैं। इस समयके अतिरिक्त वहाँ कोई भी नहीं रहता, कोई भी कार्य नहीं होता। प्रातःकालके सिवा वहाँ कोई जातातक नहीं, केवल शीतल-मन्द-सुगन्ध वायुकी लहरियाँ वनकी ओरसे नाचती हुई उस भूमिखण्डमें बार-बार आती हैं तथा वहाँ किसीको न देखकर सिस्-सिस् शब्द करती हुई दूसरे वनमें चली जाती हैं। पूतनाके प्रकाण्ड मृतशरीरको धारण करनेयोग्य यही स्थान है—लीलाशक्तिने ही पहलेसे ही इसकी भी व्यवस्था की है। अन्यथा वह राक्षसी व्रजपुरमें जहाँ कहीं भी पड़ती, वहाँ व्रजपुरवासियोंका अपार अनिष्ट होता ही। इसीलिये वह यहाँ गिरी है। शरीर इतना भयानक, आकृति इतनी बीभत्स है कि देखते ही प्राण सूख जाते हैं; पर यशोदानन्दन तो अभी भी सर्वथा निर्भय रहकर सरल नेत्रोंसे देखते हुए उसके वक्षःस्थलपर खेल रहे हैं।

राक्षसीका शरीर ज्यों ही आकाशसे पृथ्वीपर गिरता है, गोपाङ्गनाएँ वहाँ पहुँच जाती हैं। मानो वे भी यातुधानीके साथ ही उड़कर आयी हों। सचमुच उड़ी-सी ही आयी हैं। पूतनाको उड़ते देखकर ये गोपियाँ दौड़ीं। वह ऊपर उड़ रही थी, ये नीचे दौड़ रही थीं। इनके नेत्र तो लगे थे राक्षसीके वक्षःस्थलपर अवलम्बित व्रजेन्द्रनन्दनकी ओर; फिर भी चरण किसी अचिन्त्यशक्तिसे आविष्ट होकर मणिमय मन्दिरोंके स्तम्भ, भित्ति, आच्छादन एवं कलशोंका, उपवनके विभिन्न वृक्ष-शाखा-वल्लरियोंका अतिक्रमण करते जा रहे थे। गोपाङ्गनाएँ ऐसी निर्बाध बढ़ रही थीं जैसे मार्गमें उपर्युक्त मन्दिर-वृक्ष आदिका सर्वथा अस्तित्व ही न हो—यह एक विस्तीर्ण समतल भूमिखण्ड हो। ऐसा होना ही चाहिये; क्योंकि यह नियम है, जिनके

नेत्र व्रजेन्द्रनन्दनकी ओर केन्द्रित हैं, उनके मार्गके समस्त विघ्न—व्यवधान विलीन हो जाते हैं। अस्तु!

गोपाङ्गनाओंने देखा, जिसे वे सम्पदधिदेवी समझ रही थीं, जिसका सौन्दर्य अभी-अभी इन्द्राणी-वरुणानीको लज्जित कर रहा था, उसका वास्तविक रूप यह है—उलूकी-जैसी आकृति है, हलके समान उग्र दाढ़ोंसे युक्त मुख है; नासाविवर ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो गिरिकन्दरा (गुफा); पर्वतकी दो बृहत् चट्टानोंकी तरह स्तन हैं; आँखें क्या हैं जैसे गम्भीर अन्ध-कूप हों; नितम्बदेश किसी नदीके भीषण पुलिन-से दीख रहे हैं; भुजा, ऊरुदेश (जङ्घा), चरण ऐसे लगते हैं मानो नदीमें पुल निर्मित हुए हों; उदर जलशून्य सरोवर-सा दीखता है। पर धन्य भाग नन्दरानीका, नन्दका। उनका यह साँवरा तो इसके चंगुलसे सर्वथा अक्षत—जीवित ही बच निकला!

गोपाङ्गनाओंने यशोदानन्दनको तुरंत उठाकर छातीसे लगा लिया। उन्हें लेकर वे क्षणोंमें ही वहाँ जा पहुँचती हैं, जहाँ नन्दरानी एवं रोहिणी मूर्च्छित पड़ी हैं। इन माताओंकी मूर्च्छा तभी टूटी, जब इन्हें नन्दनन्दनका स्पर्श प्राप्त हुआ। झर-झर बहती हुई अश्रुधारासे पुत्रका अभिषेक करती हुई, सिर, कपोल एवं होठोंका चुम्बन करती हुई प्रेमावेशसे नन्दरानी पुनः मूर्च्छित हो जाती हैं। पर इस बारकी मूर्च्छामें नन्दरानीका प्रत्येक रोम आनन्दसे बार-बार पुलकित हो रहा है।

इतनी देर नन्दनन्दन निशाचरीके वक्षःस्थलपर रहे हैं, मलिनस्पर्शजनित कोई अनिष्ट उन्हें न हो जाय—इस आशङ्कासे उनके रक्षाविधानकी व्यवस्थामें सभी गोपाङ्गनाएँ अविलम्ब जुट पड़ती हैं। कपिला गाय लायी गयी। उपनन्दपत्नी उसकी पूँछ पकड़कर उसे तीन बार यशोदानन्दनके अङ्गोंके चारों ओर घुमाती हैं। फिर गायके अङ्गोंसे उनका स्पर्श कराती हैं। पश्चात् काले सरसोंके दानोंको श्याम कलेवरपर औंछकर अग्निमें डाल देती हैं। एक गोपी दौड़कर सूप उठा लाती है, उसके कोनेसे उनके सिर एवं उदरदेशको बहुत ही धीरेसे छूकर सूपको अलग रख देती है। इतनेमें गोमूत्र लिये हुए स्वयं उपनन्द आ पहुँचते हैं, उससे तुरंत यशोदानन्दनको स्नान कराया जाता है। गोमूत्रसे आर्द्र हुए शरीरमें अत्यन्त चिकनी गोरज लगा दी जाती है; फिर व्रजाङ्गनाएँ क्रमशः उनके ललाट, उदर, वक्षःस्थल, कण्ठ, दक्षिणकुक्षि, दक्षिणबाहु, दक्षिणस्कन्ध, वामकुक्षि, वामबाहु, वामस्कन्ध, पृष्ठदेश एवं कटि—इन बारह अङ्गोंपर—केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ एवं दामोदर—इन बारह भगवन्नामोंका उच्चारण करती हुई गोबरका तिलक लगाकर रक्षा करती हैं। तदनन्तर गोपिकाएँ स्वयं आचमन करती हैं तथा पहले अपने शरीरका अज आदि एकादश बीजमन्त्रोंसे अङ्गन्यास-करन्यास करके यशोदानन्दनके अङ्गोंमें बीजन्यास करती हैं। **'अं नमोऽजस्तवाङ्घ्री अव्यात्' 'मं नमो मणिमांस्तव जानुनी अव्यात्'** आदिका मन-ही-मन उच्चारण करती हुई गोपसुन्दरियाँ नन्दनन्दनके उन-उन अङ्गोंका स्पर्श कर रही हैं, रक्षा कर रही हैं। वे यह नहीं जानतीं कि जिन अङ्गोंका रक्षण हो रहा है, उन्हींके एक-एक रोमविवरमें अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड रक्षित हैं। आगे भी वे इस बातको जान नहीं सकेंगी; क्योंकि उनके चिन्मय वात्सल्यरससुधासागरके अतल-तलमें यह ज्ञान अनादिकालसे डूबा हुआ है और अनन्तकालतक डूबा ही रहेगा। जो हो, इन बाह्य अङ्गोंकी रक्षा सम्पादन करके फिर दिक्-रक्षा आदि अन्यान्य शेष रक्षाकृत्योंको विधिवत् पूर्ण करती हुई व्रजसुन्दरियाँ पुत्रको जननी यशोदाकी गोदमें रख देती हैं।

व्रजरानी पुत्रको छातीसे लगाये गद्गद कण्ठसे कहती हैं—'बहनो! व्रजेश्वर सदासे उपराम थे; पुत्र हो, न हो—दोनोंमें उनकी समान वृत्ति थी। मैं उनकी दासी हूँ, सर्वांशमें उनका अनुगमन मेरा धर्म है; इसीलिये मैं भी उपराम हो चुकी थी। हम दोनोंने निश्चय कर लिया था—अपुत्र रहकर ही जीवनयात्रा समाप्त करनी है। पर तुम सबकी अभिलाषाने हमारी

विश्वविमोहन श्रीकृष्ण

B. K. Mulia

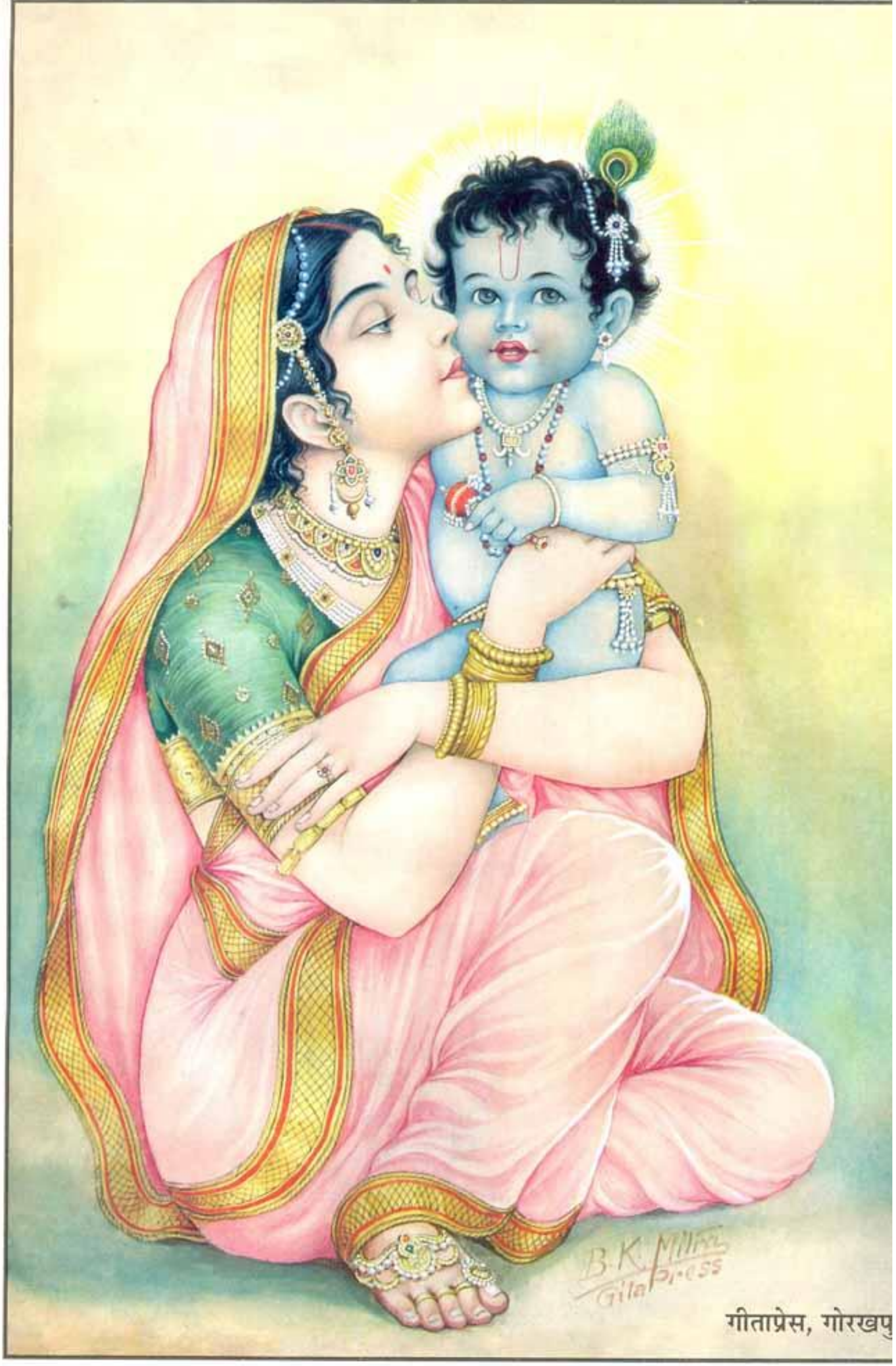

दुलारा लाल

गीताप्रेस, गोरखपुर

'जागिये, ब्रजराज कुँवर!'

गीताप्रेस, गोरखपुर

अहो ईड्य! नव घन तन स्याम। तडिदिव पीत बसन अभिराम॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

जीवनधारा पलट दी। तुम सबके प्रबल आग्रहसे ही विविध अनुष्ठान हुए, समस्त व्रजकी उत्कट इच्छा देखकर ही व्रजेश्वरने यज्ञादिके अनुष्ठानका आयोजन स्वीकार किया। इष्टदेव नारायणकी कृपा हुई, व्रजेश्वरको तभीसे इस बालककी झाँकी होने लगी; मुझे भी यह दीखने लगा। इसे देख-देखकर व्रजेश्वर मुग्ध होने लगे, उनकी सारी उपरामता नष्ट होने लग गयी; फिर तो इसे पुत्ररूपमें पानेके लिये वे व्याकुल हो उठे। भक्तकी व्याकुलतासे द्रवित होकर श्रीनारायणने भी इसे भेज ही दिया। पर बहनो! यह सब तुम्हारी अभिलाषाका परिणाम है। तुम सब न होतीं तो मैं इसे कहाँ देख पाती; मैं वास्तवमें इसकी जननी होनेयोग्य हूँ भी नहीं। इसीसे ग्रह मुझे छोड़कर चला गया था। तुमने फिरसे लाकर मेरी गोद भर दी। पर यह तो तुम्हारी वस्तु है, इसे अब मैं तुम सबके चरणोंमें ही अर्पण कर रही हूँ; इसकी रक्षा तुम्हीं कर सकोगी……।' यह कहती हुई व्रजरानी पुत्रको व्रजसुन्दरियोंके चरणोंमें रख देती हैं तब सुबुक-सुबुककर रोने लग जाती हैं!!

व्रजरानीका यह करुणभाव देखकर गोपाङ्गनाओंका भी धैर्य छूट जाता है। वे यशोदानन्दनको अतिशय शीघ्रतासे गोदमें उठाकर अश्रुपूरित कण्ठसे कहने लगती हैं—

अस्माकं यदखिलमस्ति पुण्यजातं
यद्वास्मत्पितृजननीकुलानुथातम्।
तेनासौ बत भवतादहो यशोदे
पुत्रस्ते निरवधिमङ्गलप्रमोदे॥

(श्रीगोपालचम्पू:)

'व्रजरानी यशोदे! हम सबकी जो समस्त पुण्यराशि है अथवा हमारे पितृकुल-मातृकुलका अनादिकालसे संचित जो समस्त पुण्यपुञ्ज है, उसका, बस, यही फल हो कि तुम्हारा यह पुत्र असीम मङ्गल, असीम आनन्दमें रहे।'

हठात् इसी समय व्रजपुरका आकाश अत्यन्त उज्ज्वल हो उठा—इतना प्रकाश, जैसे सहस्र सूर्योंका एक साथ उदय हुआ हो; साथ ही वह प्रकाश इतना शीतल है कि सहस्र चन्द्रोंकी ज्योत्स्ना भी उसके सामने नगण्य है। व्रजवासी जो जहाँ थे, वहींसे देखने लगे, अनुभव करने लगे—पूतना एक अतिशय दिव्य चिन्मय सूक्ष्मशरीरमें प्रविष्ट हो गयी है, एक रत्नसारनिर्मित विमान आया है, विमान दिव्यातिदिव्य एवं मनोहर भगवत्पार्षदोंसे घिरा है, एक लक्ष श्वेत चामरोंसे तथा जड़े हुए एक लक्ष दर्पणोंसे अत्यन्त सुशोभित है, उसमें अग्निसे दग्ध न होनेवाले सुन्दर सूक्ष्म वस्त्रोंके पर्दे लगे हैं, अनेकों चित्र-विचित्र सुन्दर रत्नकलश हैं, सौ सुन्दर रत्नमय पहियोंका विमान है, रत्नोंकी ज्योतिसे पहिये चमचम कर रहे हैं। पूतना इसी विमानपर दौड़कर चढ़ने चली; भगवत्पार्षद उसे चढ़ाकर गोलोकधामकी ओर चल पड़े। गोपोंके, गोपिकाओंके विस्मयकी सीमा नहीं रहती—

स्थूलदेहं परित्यज्य सूक्ष्मदेहं विवेश सा।
आरुरोह रथं शीघ्रं रत्नसारविनिर्मितम्॥
पार्षदप्रवरैर्दिव्यैर्वेष्टितं सुमनोहरैः।
श्वेतचामरलक्षेण शोभितं लक्षदर्पणैः॥
वह्निशौचेन वस्त्रेण सूक्ष्मेण भूषितं वरम्।
नानाचित्रविचित्रैश्च सद्रत्नकलशैर्युतम्॥
सुन्दरं शतचक्रं च ज्वलितं रत्नतेजसा।
पार्षदास्तां रथे कृत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम्।
दृष्ट्वा तमद्भुतं लोका गोपिकाश्चातिविस्मिताः॥

(ब्रह्म० वै० कृष्ण० ख० अ० १०)

पूतनाके अतीत जन्मका नाम रत्नमाला है। वह बलि राजाकी कन्या थी। जिस समय भगवान् वामन राक्षसराज बलिके यज्ञमें पधारे, उस समय वामनके सुन्दर खर्व कलेवरको देखकर रत्नमालाका अन्तर्हृदय वात्सल्यसे भर गया। अभिलाषा हुई—'इस वटुको मैं पुत्रके समान अपने वक्षःस्थलपर धारण करती, यह मेरा स्तनपान करता।' अभिलाषा वामनके हृदयमें प्रतिबिम्बित हो गयी—नहीं, नहीं, सदाके लिये अङ्कित हो गयी। उन्होंने तत्क्षण ही मूक 'एवमस्तु' कह दिया। पर रत्नमाला इसे सुन न सकी,

बल्कि कुछ ही क्षणोंमें अपना यह मनोरथ भी भूल गयी। इतना ही नहीं, वामनने जब बलिका सर्वस्व हरण कर लिया, उस समय रत्नमाला क्रोधसे जल उठी। वटुका प्राण लेनेके लिये व्याकुल हो उठी। पर बलिने निषेध कर दिया। पिताकी आज्ञा टाल नहीं सकती थी, खिन्न होकर चुप रह गयी। इस तरह यह संकल्प भी अपूर्ण ही रह गया। रत्नमाला कालक्रमसे इस बातको भूल गयी, पर वामन कैसे भूलते! वे तो रत्नमालासे वात्सल्यभावका ऋण ले आये हैं, बदलेमें 'एवमस्तु' बन्धक रख आये हैं। वामनके इसी ऋणका परिशोध तो व्रजेन्द्रनन्दनने किया है। इतने दिन बाद जब दैत्यकुलके संस्कार रहनेसे रत्नमाला पूतना बन गयी, तब उसके परिशोधका समुचित अवसर आया तथा व्रजेन्द्रनन्दन स्वयं पधारे हुए हैं ही, इसलिये उन्होंने ही परिशोध किया है। अस्तु!

उपनन्दने पूतनाके उस राक्षसी शरीरको खण्ड-खण्ड कर देनेकी आज्ञा दी। आज्ञाकी देर थी, नन्दव्रजमें बसी हुई चर्मकार जाति आबालवृद्ध इस काममें लग गयी, उसके अवयवोंको छिन्न-भिन्न करके अनेकों शवस्तूप उन लोगोंने बना दिये। फिर जहाँ पूतनाका शरीर गिरा था, वहाँसे भी दूर अलग अनेकों काष्ठचिताओंका निर्माण किया गया, अवयव-स्तूपोंको ले जाकर उन चिताओंपर रख दिया गया।

धक्-धक् करती हुई सैकड़ों चिताएँ एक साथ जल उठती हैं। पूतनाके जलते हुए शरीरसे निर्गत धूम्रराशि आकाशमें ऊपर उठने लगती है। वह इतनी सुन्दर, सुरभित है, जैसे उसके कण-कणमें निस्संदेह अगुरु-सौरभ भरा हो। पवन इसका विस्तार करता हुआ मथुराकी ओर प्रवाहित होने लगता है, मानो उधरसे आते हुए व्रजेन्द्रसे कहने जा रहा हो—'व्रजपुर-अधीश्वर! यह वास्तवमें अगुरु-सौरभ नहीं, तुम्हारे पुत्रका अद्भुत यशःसौरभ है; पूतना उसे मारने गयी थी, पर उसे तो उसने माता बना लिया। साथ ही उसके शरीरकी भी सारी मलिनता दूध पीते-पीते ही पी ली और बदलेमें उसमें यह सौरभ भर दिया। पर गोपेश! मुझसे भी एक अपराध बन गया है। मैं लोभ-संवरण नहीं कर सका, सबसे बड़ा दानी बननेके लोभसे तुम्हारी आज्ञा बिना ही तुम्हारे नन्हे-से पुत्रका यशःसौरभ एकत्र कर लाया हूँ। तुम मुझे यह ले जाने दो। इसे मैं अपने दुकूलमें अनन्तकालतक छिपाये रखूँगा। जो तुम्हारे पुत्रको प्यार करेंगे, उनके प्राणोंमें मिलकर गीतके रूपमें इसे जगत्‌में वितरण करूँगा—

ऐसी कौन प्रभु की रीति?
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ॥

कंसके भेजे हुए श्रीधर नामक ब्राह्मणका व्रजमें आगमन और व्रजरानीके द्वारा उसका सत्कार

सिरपर कलसी रखकर व्रजरानी यमुनातटकी ओर चल पड़ीं। दासियोंने पैर पकड़ लिये, सभी अनुनय-विनय करने लगीं, पर नन्दमहिषीने किसीकी नहीं सुनी। श्रीरोहिणीने एक हाथ बढ़ाकर कलसी थाम ली एवं दूसरेसे श्रीयशोदाकी ठोड़ी छूकर बड़े प्यारसे कहा—'बहन! तू रहने दे, मैं जल भरकर ला देती हूँ।' किंतु व्रजेन्द्रगेहिनीने आज श्रीरोहिणीकी बात भी टाल दी, उनका निवारण भी न माना। मानतीं कैसे? वे तो सोच रही हैं—'सच्ची सेवा वह है, जो स्वयं की जाय; इस जलसे इन अभ्यागत ब्राह्मणकी सेवा होगी, भूदेव इससे भोजन बनायेंगे; भोजन पाकर जब तृप्त हो जायँगे, तब मैं अपने इस साँवरे शिशुको इनके चरणोंमें रख दूँगी; मेरी सेवासे प्रसन्न होकर ये मेरे लालको अमोघ आशीर्वाद देंगे, मेरा साँवरा चिरजीवी हो जायगा।' अतः सबको समझा-बुझाकर अपने हाथों जल लाने वे चली ही गयीं। सरलहृदया जननी यशोदा किंचिन्मात्र भी अनुसंधान न पा सकीं कि रक्षकके रूपमें यह भक्षक उपस्थित हुआ है; यह जगत्पूज्य ब्राह्मण नहीं, कंसपूज्य नाममात्रका ब्राह्मण श्रीधर है; केवल कलेवरमात्र ब्राह्मणका है, इसके सारे कर्म तो राक्षसके हैं; कंसका भेजा हुआ यह यहाँ आया है और आया है यशोदानन्दनका प्राण-हरण करनेकी पैशाचिक नीच अभिसंधि लेकर!

श्रीयशोदाके पीछे-पीछे द्वारदेशतक रोहिणीजी भी चली आयी थीं। नन्दरानीके महावर लगे हुए सुकोमल चरणोंकी ओर देखती हुई वे चिन्ता कर रही थीं—प्रसव हुए कल तीसवाँ दिन था; नन्दरानी कल द्वितीय बार यमुना-पूजन करने गयी थीं, इस थोड़े-से परिश्रमसे ही लौटते समय वे थक गयी थीं; फिर आज जलसे भरी कलसी कैसे उठाकर लायेंगी? इस विचारसे रोहिणीका करुण हृदय एक बार धड़क उठा। मनमें आया, मैं पीछे-पीछे जा पहुँचूँ। पर ऐसा करनेसे दोनों शिशु घरमें अकेले रह जाते हैं। साथ ही श्रीनारायणदेवकी भोगसामग्री प्रस्तुत करनेकी भी त्वरा है; क्योंकि आज पहलेसे ही श्रीधर ब्राह्मणकी अभ्यर्थनामें लग जानेसे पर्याप्त विलम्ब हो चुका है। इसलिये रोहिणी मैया पुनः आँगनमें लौट आयीं। उन्होंने दृष्टि घुमाकर हिंडोलेपर सोये हुए शिशुकी ओर देखा तथा एक बार सारी व्यवस्था ठीक कर आनेके उद्देश्यसे पाकशालामें चली गयीं।

भाग्यक्रमसे व्रजेन्द्र भी आज गोष्ठमें चले गये थे। मथुरासे लौटकर जब व्रजराजने पूतनाघटित उत्पातकी सारी गाथा सुनी, तबसे उन्होंने गोष्ठकी ओर जाना, अथवा कहीं भी दूर जाना सर्वथा स्थगित कर रखा था। उनका हृदय अत्यन्त सशङ्कित हो गया था। वे प्रायः सोचा करते—भाई वसुदेवकी बात अक्षरशः सत्य निकली, भाईने तो वहीं सावधान किया था—

नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले॥

(श्रीमद्भा० १०। ५। ३१)

'तुम्हें बहुत कालतक यहाँ नहीं ठहरना चाहिये, गोकुलमें उत्पात हो रहे हैं।'

इसीलिये गोकुलसे बाहर जाना तो दूर रहा, व्रजेन्द्र प्रासादसे भी अलग नहीं होते थे। बार-बार अन्तःपुरमें आते एवं शिशुको सकुशल देखकर आनन्दमग्न हो जाते। व्रजेन्द्रकी उपासनाका ध्यान तो उसी क्षण परिवर्तित हो चुका था, जिस क्षण उन्होंने इस शिशुका मुख देखा। पर वाणी इष्टमन्त्रका जप करती रहती थी। किंतु जब मथुरासे लौटे, पूतनाके भीषण चंगुलसे अक्षत रक्षित पुत्रको गोदमें लिया एवं उसका मुख देखा तो उस क्षणसे मानो मन्त्र भी बदल गया। तबसे

इष्टमन्त्रका जप करते-करते व्रजेन्द्र भूलकर यह जपने लग जाते—

यदि नारायणेन त्वं दत्तोऽसि कृपणाय मे।
तेनैव सर्वं निर्वोढा सोढा च मम दुर्नयः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

'यदि श्रीनारायणने मेरे-जैसे कृपणके हाथमें तुम्हें दिया है तो वे ही आगे भी सारी व्यवस्था करेंगे, सब कुछ निर्वाह करेंगे, वे अवश्य तुम्हारी रक्षा करेंगे; मेरे अपराधोंको वे सहते आये हैं, आगे भी सहेंगे।'

व्रजराजके सामने शिशुका मुखमण्डल निरन्तर वर्तमान रहता तथा जब भावावेश बढ़ जाता तो वे 'निर्वोढा, निर्वोढा' (निर्वाह करेंगे, निर्वाह करेंगे) कहते हुए पुत्रके पास दौड़ पड़ते एवं हृदयसे लगाकर आत्मविस्मृत हो जाते। पर जब तेईस दिन सकुशल बीत गये, व्रजपुरपर कोई विपत्ति नहीं आयी, व्रजवासियोंके प्रतिदिन होनेवाले उमंगभरे उत्सवोंमें कोई व्याघात नहीं आया, तब व्रजेन्द्रके मनमें पुत्रकी अनिष्ट-आशङ्का कुछ शिथिल पड़ गयी। इसीसे वे आज गोष्ठकी ओर जानेका साहस कर सके, व्रजरानीको सावधान करके गोष्ठकी ओर चले गये थे। उनके पीछे यह राक्षसहृदय ब्राह्मण आया। ब्राह्मण प्रतिदिन ही आते थे। व्रजेन्द्र उनकी इतनी सेवा करते कि ब्राह्मण आशीर्वाद देते-देते गद्गद हो जाते। किंतु वे आज अनुपस्थित थे। अतः जैसे ही श्रीधर आया कि व्रजरानी स्वयं उसकी सेवामें जुट पड़ीं।

अचिन्त्य-लीला-महाशक्तिकी प्रेरणासे दासियोंने तो यह समझ लिया कि यशोदानन्दनके पास माता रोहिणी चली गयी हैं, एवं पाकशालामें बैठी हुई रोहिणीने यह अनुमान कर लिया कि 'दासियाँ पुत्रके पास आ गयी हैं, ब्राह्मणदेव वहाँ विराजमान हैं ही। फिर चिन्ता किस बातकी?' पर वास्तवमें वहाँ हैं केवल व्रजेन्द्रनन्दन तथा घातमें बैठा हुआ नीचबुद्धि श्रीधर। श्रीधर मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा है—बड़ा अच्छा अवसर है, सभी अपने-आप चले गये!

श्रीधरने दृष्टि उठाकर यशोदानन्दनकी ओर देखा। पर वह देखकर भी वस्तुतः न देख सका। वे इस समय एक छोटे-से पालनेपर पड़े हैं। जाते समय जननी यशोदाने पालनेकी डोरी ढीली करके उसे पृथ्वीसे सटा दिया है—इस भयसे कि 'मेरे पीछेसे शिशुको कहीं कोई वेगसे झुलाने न लगे।' निकट ही एक सूप पड़ा है। उसका कोना पालनेसे सटा दिया गया है—इसलिये कि किसीका दृष्टिदोष पुत्रका स्पर्श न कर सके। भला, जिसके भयसे पवन संचारित होता है, सूर्य प्रतिदिन पूर्व क्षितिजपर प्रकाशित होकर, चार पहर ताप देकर पश्चिम क्षितिजमें विलीन हो जाता है; सुरराज जिसके भयसे वर्षाकी धारा दान करते हैं, अगणित तारिकाराशि चमकती रहती है; जिससे भयभीत होकर असंख्य तरु-वल्लरियाँ, वनस्पतियाँ पुष्पित होती हैं, फलभार वहन करती हुई जगत्को मधुर फल वितरण करती हैं; जिसके डरसे सरिताएँ प्रवाहित होती हैं और सागर अपनी मर्यादाका त्याग नहीं करता; जिससे भयभीत अग्नि प्रज्वलित होती है और भूधरोंको वक्षःस्थलपर धारण करनेवाली पृथ्वी जलमें निमग्न नहीं होती; जिसका शासन मानकर आकाश जीवित प्राणियोंको श्वास-प्रश्वासके लिये अवकाश देता है और त्रिदेव सृजन-पालन-संहारमें तत्पर रहते हैं, उस 'काल' के भी स्रष्टा एवं स्वामी व्रजेन्द्रनन्दनको दृष्टिदोषके भयसे बचानेके लिये व्यग्रताके साथ उद्योग किया जाय—यह कितनी अद्भुत, आश्चर्यमयी घटना है! अनन्त विश्व जिनके उदरमें अवस्थित हो, वे व्रजेन्द्रनन्दन क्षुद्र दृष्टिदोषसे रक्षा पानेके लिये सूपके कोनेमें पड़े हों, इससे अधिक आश्चर्य और क्या होगा—

देखौ अदभुत अखिगत की गति, कैसी रूप धरयौ है हो।
तीन लोक जाके उदर बसत, सो सूप के कोने परयौ है हो॥

इसीलिये श्रीधर भी व्रजेन्द्रनन्दनको पहचान नहीं पाता। ऐसी अद्भुत विचित्र पहेलीको समझनेकी शक्ति भी श्रीधरकी मलिन बुद्धिमें नहीं है। वह यह समझने आया भी नहीं है। वह तो आया है अपने यजमान क्रूर कंसका कण्टक दूर करने! पर उसकी इच्छा न रहनेपर भी व्रजेन्द्रनन्दनने उसे कुछ समझा देना चाहा।

उनकी वह निर्मल चाह ही श्रीधरके मलिन अन्तःकरणमें प्रतिबिम्बित हुई, पर हुई पात्रके अनुरूप ही। वह सोचने लगता है— व्रजेन्द्रगेहिनीके लौट आनेके पूर्व ही इस बालकको समाप्त कर दूँ!

अब व्रजेन्द्रनन्दनके सामने एक नयी समस्या उपस्थित होती है। पूतनाने तो ब्राह्मणीका छद्म ही किया था, पर श्रीधर तो ब्राह्मणकुलोत्पन्न है! ब्राह्मणका वध कैसे किया जाय? ब्राह्मण तो मेरा भी नित्य आराध्य है, यह मैं घोषित कर चुका हूँ।' मानो लीला-शक्ति व्रजेन्द्रनन्दनके समक्ष यह दृश्य रख देती है—

वैकुण्ठधामका नैःश्रेयस नामक वन है; कल्पतरुओंकी पंक्तियाँ हैं; वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शीत, शिशिर— इन छहों ऋतुओंकी समस्त शोभासे वृक्षावली नित्य अलंकृत है; सरोवरोंका निर्मल जल फूली हुई माधवीलतासे परिव्याप्त है, उनपर प्रस्फुटित कुसुमसमूहोंसे मकरन्द झर रहा है, उनके मधुगन्धको अपने दुकूलमें धारण किये मन्द समीर प्रवाहित हो रहा है; गुन-गुन करती हुई भ्रमरावली विचरण कर रही है; किसी भ्रमरका गुञ्जन इतना उच्च— पर इतना मधुर है मानो वह ललित उच्चकण्ठसे हरि-गुण-गान कर रहा हो; उसका गुञ्जन श्रवणकर कुछ क्षणके लिये पारावत, कोकिल, सारस, चक्रवाक, चातक, हंस, शुक, तीतर, मयूरोंका कोलाहल शान्त हो जाता है, मानो ये पक्षी भ्रमरके द्वारा किये हुए हरि-कीर्तनका आनन्द पाकर आत्मविस्मृत हो गये हों; तुलसीकी पंक्तियोंसे वन सर्वत्र सुशोभित है। मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलकवृक्ष), उत्पल (रात्रिमें विकसित होनेवाले कमल), चम्पक, अर्ण, पुंनाग, नाग, बकुल, (मौलसिरी), अम्बुज (दिनमें विकसित होनेवाले कमल) एवं पारिजात आदि सभी पुष्प अतिशय सौरभशाली होनेपर भी गर्वरहित होकर तुलसीकी वन्दना कर रहे हैं; क्योंकि ये पुष्प जानते हैं— श्रीहरिको सबसे अधिक प्रिय तुलसीपत्र ही है। तुलसीके समान तपस्विनी और कौन है, जिन्हें श्रीहरि अपने श्रीअङ्गके आभूषणोंमें स्थान दें। नैःश्रेयस वनका आकाश वैदूर्य, मरकत, सुवर्णरचित असंख्य विमानोंसे पूर्ण है, ऐसे शोभासम्पन्न वनकी सप्तमकक्षा (सातवीं ड्योढ़ी)-पर अनलप्रभ नित्यकुमार सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार ऋषि अवस्थित हैं। उनके निकट हतप्रभ जय-विजय खड़े हैं। उन ब्रह्मकुमारोंसे नारायणरूपमें मैं यह कह रहा हूँ—

यस्यामृतामलयशःश्रवणावगाहः
सद्यः पुनाति जगदा श्वपचाद्विकुण्ठः।
सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्ति-
श्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम्॥
यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं
सद्यःक्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम्।
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः
प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान् वहन्ति॥
नाहं तथाद्मि यजमानहविर्विताने
श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं
तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः॥
येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोग-
मायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः।
विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः
सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान्॥
ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया
भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्
गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः॥
ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्त-
स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः।
वाण्यानुरागकलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः
सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः॥

(श्रीमद्भा० ३। १६। ६—११)

"मुनिगण! मुझे लोग 'विकुण्ठ' कहते हैं, इसलिये कि मेरी निर्मल सुयशसुधामें अवगाहन करके चण्डालपर्यन्त समस्त जगत् तत्क्षण पवित्र हो जाता है। किंतु यह पवित्र कीर्ति मुझे मिली कहाँसे? आप ब्राह्मणोंने ही तो दी है। फिर आपलोग मुझे प्रिय हों,

इसमें आश्चर्य ही क्या है! मैं तो सचमुच ब्राह्मणकुलके प्रतिकूल आचरण करनेवाली यदि मेरी भुजा भी हो तो उसे काटकर फेंक दूँ। मेरी चरणरज इतनी पवित्र बन गयी है कि इसके संसर्गमें आते ही चर-अचर, जड-चेतन—समस्त भूतोंके समस्त पाप सदाके लिये नष्ट हो जाते हैं। पर यह पवित्रता भी कहाँसे आयी? यह भी तो ब्राह्मण-कुलकी सेवाका ही परिणाम है। और तो क्या, आपकी सेवासे ही मुझे ऐसा सुन्दर स्वभाव प्राप्त हुआ है कि जिन लक्ष्मीके लवमात्र कृपाकटाक्षके लिये देवतागण संयम-नियमका पालन करते रहते हैं, वे लक्ष्मी भी मेरे उदासीन रहनेपर भी मुझे परित्याग नहीं करतीं! एक ओर अनेक यज्ञसम्भार एकत्र कर अग्निमें मेरे निमित्त विधिवत् आहुति दी जा रही हो तथा दूसरी ओर उन ब्राह्मणोंको, जो अपना समस्त कर्मफल मुझमें समर्पण कर संतुष्ट हो चुके हैं, घृतसिक्त पायसान्न, विविध मिष्टान्न आदि भोजन कराया जा रहा हो, वे ब्राह्मण प्रत्येक ग्रासपर तृप्त हो रहे हों—इन दोनोंके मुखसे यद्यपि मैं ही ग्रहण करता हूँ, पर जितनी तृप्ति ब्राह्मणके मुखसे मुझे होती है, उतनी अग्निके मुखसे नहीं। योगमायाके अखण्ड, असीम ऐश्वर्यका तो मैं स्वामी हूँ। मेरे चरणोंसे निस्सृत गङ्गा चन्द्रचूड़ भगवान् शंकरको, त्रिभुवनको निरन्तर पावन करती हैं। ऐसा परम पवित्र एवं परमेश्वर होनेपर भी मैं ब्राह्मणकी पवित्र चरणरजको मुकुटपर धारण करता हूँ। ऐसे ब्राह्मणकी समस्त चेष्टाओंके आगे कौन अपना सिर नहीं झुका देगा! श्रेष्ठ द्विज, पयस्विनी गौएँ और अनाथ प्राणी—ये तीनों मेरे शरीर हैं। जो प्राणी पापाचारसे विवेकभ्रष्ट होकर इनमें भेद मानते हैं, उनकी बड़ी दुर्गति होती है। वे नरकगामी होते हैं। यमराजके दूत गृध्र बनकर उनके सामने आते हैं, सर्पोंके समान क्रुद्ध होकर उनके अङ्गोंको नोच डालते हैं। ब्रह्मकुमारो! कटुभाषी ब्राह्मणोंमें भी जो मेरी भावना करते हैं, होठोंपर मुसकानका अमृत भरकर विकसित मुखमुद्रासे, प्रसन्न हृदयसे उनका आदर करते हैं, अनुरागपूरित वचनोंसे प्रार्थना करते हुए उन्हें शान्त करते हैं—जैसे रूठे हुए पिताको पुत्र मनाता है एवं जैसे मैं इस समय आपकी मनुहार कर रहा हूँ, वैसे उस ब्राह्मणका जो सम्मान करते हैं, वे प्राणी मुझे अपने अधीन कर लेते हैं।"

शिशुरूपधारी व्रजेन्द्रनन्दनको मानो अपने नारायणरूपसे की गयी इसी घोषणाकी स्मृति हो आयी और वे सोचने लगे—

बाँझन मारैं नहीं भलाई। (सूरदास)

किंतु बढ़े हुए व्रण (फोड़े) की शुद्धि भी तो नितान्त आवश्यक है, चाहे वह सिरका व्रण ही क्यों न हो। इसीलिये व्रजेन्द्रनन्दनने निश्चय कर लिया—

अँग याकौ मैं देउँ नसाई। (सूरदास)

यशोदानन्दनकी समस्या सुलझ गयी, पर वह सुलझी श्रीधरको उलझानेके लिये। श्रीधर ज्यों ही लपककर पालनेके पास आया कि अघट-घटना-पटीयसी योगमायाकी लीला आरम्भ हो गयी। वह समझ नहीं सका कि क्या रहस्य है; क्योंकि शिशुका कलेवर ज्यों-का-त्यों रहा, हाथ भी जैसे थे वैसे ही रहे, फिर भी श्रीधरका हाथ शिशुके हाथमें आ गया। दूसरे ही क्षण एक जोरका झटका लगा और श्रीधर पृथ्वीपर गिर पड़ा। अब उसे प्रतीत हुआ कि मानो इस बालकने दोनों चरणतलोंके आरपार धरतीमें घुसेड़ते हुए दो मोटी कीलें जड़ दी हों। कील ठोकनेकी वेदनाका अनुभव नहीं हुआ, पर पैर धरतीसे ऐसे चिपक गये कि टस-से-मस नहीं हो सकते। इसके पश्चात् उसे अनुभव हुआ, शिशुने मेरी जीभ पकड़कर ऐंठ दी है। बस, अब बोलनेकी शक्ति भी सर्वथा लुप्त हो गयी। श्रीधर भयभीत नेत्रोंसे बालककी ओर देखने लगा। उसे दीखा—बालक उठा, निकटस्थ अन्तर्गृहमें जा पहुँचा। वहाँ बहुत-से दधिपूर्ण भाण्ड सुरक्षित रखे हुए हैं। उनमेंसे कुछ भाण्डोंको इसने फोड़ डाला तथा वहाँसे कुछ दही लाकर उसने उसके (श्रीधरके) मुखपर चुपड़ दिया। ब्राह्मणको अतिशय आश्चर्य है, दहीका एक कण भी बालककी अँगुलियोंमें नहीं लगा। यह सब करके वह पूर्ववत् पालनेपर सो जाता

है एवं सोकर रोने लगता है।' यह देखकर श्रीधर तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है।

यशोदानन्दनकी क्रन्दनध्वनि पाकशालामें जा पहुँचती है। मैया रोहिणी दौड़ पड़ीं, पर उनके आनेके पूर्व जननी यशोदा भरी कलसी लिये आ पहुँचती हैं। बालकको रोता देखकर गोदमें उठा लेती हैं। उसे हृदयसे लगाये जननी बार-बार फूटे भाण्ड, बिखरे दही एवं दहीसे चुपड़े हुए ब्राह्मणके मुखकी ओर देखती हैं। वे सोचती हैं—ब्राह्मणने यह कुकृत्य क्यों किया? नहीं, नहीं यह ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मणके द्वारा ऐसे कर्म कदापि सम्भव नहीं। यह निश्चय ही कोई राक्षस है। फिर भी संदेह मिटानेके लिये ब्राह्मणसे पूछती हैं, बार-बार सत्य-सत्य बतानेके लिये आग्रह करती हैं; किंतु—

बाँभनके मुख बात न आवै, जीभ होइ तौ कहि समुझावै।

देखते-ही-देखते गोपाङ्गनाओंकी भीड़ नन्दप्राङ्गणमें एकत्र हो जाती है। इतनेमें व्रजेन्द्र भी गोष्ठसे आ पहुँचते हैं। सारी बात जानकर उपनन्दसे परामर्श करते हैं। यह निश्चय होता है—कोई भी हो, इसे घरसे बाहर हटा देनेमें ही मङ्गल है। तदनुसार गूँगे श्रीधरको गोपगण व्रजपुरकी सीमाके बाहर छोड़ आते हैं।

व्रजेन्द्रनन्दनके एकहस्त-परिमित श्याम शरीरमें अभी-अभी कुछ क्षण पहले श्रीधरको शिक्षा देनेके लिये जो ऐश्वर्यका प्रकाश हुआ है, इसकी गन्धतक व्रजवासी न पा सके। व्रजरानी तो पातीं ही कैसे! उनके वात्सल्यपूरित हृदयमें तो ऐसे ऐश्वर्यकी छायातकके प्रविष्ट होनेका अवकाश नहीं है। वे क्षणोंमें ही इस घटनातकको भूल गयीं। भूलकर पुत्रसे लाड़ लड़ानेमें संलग्न हो गयीं। कभी स्तनपान कराती हैं तो कभी घन-घन मुख-चुम्बनका दान देकर शिशुरूपधारी गोलोक-विहारीके वात्सल्य-रसास्वादकी चिरवर्धनशील लालसामें नूतन रंग घोल देती हैं। कभी कुञ्चित-घनकृष्ण-केशमण्डित मुखको निहारती रह जाती हैं, तो कभी पुत्रके समस्त अङ्गोंसे निस्सृत अद्भुत अनुपम सौरभका आघ्राण पाकर आत्मविस्मृत हो जाती हैं। प्रत्येक दो घड़ीपर शय्याके आच्छादन-वस्त्रको, शिशुके अङ्गावरक वस्त्रको बदल देती हैं। इस क्रियामें लीलाविहारी किंचित् रोने लग जाते हैं। पर यह क्रन्दन भी इतना मधुर होता है, मानो किसी अभिनव वीणाकी मधुरातिमधुर स्वरझंकृति हो; यशोदाके कर्णपुटोंमें अमृत-निर्झर झरने लग जाता है। देखते-देखते आजका दिन समाप्त हो जाता है, संध्या आ जाती है। प्रतिदिनकी तरह आज भी व्रजरानी स्तन-पानसे तृप्त हुए पुत्रको पालनेमें लिटाकर मन्द-मन्द झुलाती हुई लोरी देने लग जाती हैं—

जसोदा हरि पालनें झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोई कछु गावै॥
मेरे लालको आउ निंदरिया, काहें न आनि सुवावै।
तू काहें न बेगि-सी आवै, तोकौं कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कें, रहि करि-करि सैन बतावै॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरें गावै।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुर्लभ, सो नँदभामिनि पावै॥

काकासुरका पराभव, औत्थानिक (करवट बदलनेका) उत्सव, जन्म-नक्षत्रका उत्सव, शकटासुर-उद्धार

अन्तरिक्षमें वायुकी-सी भीषण सन्-सन् ध्वनि हुई। कंससहित सभी राक्षस-सामन्त शङ्कित होकर ऊपरकी ओर देखने लगे। पर भयका कोई कारण न था। सबने तुरंत जान लिया कि यह तो उन्हींका मित्र वातदेहधारी उत्कच दैत्य है, जो काकासुरकी बात सुनकर उपेक्षाकी हँसी हँस रहा है।

आजकी घटना है—कंसप्रेरित काकासुर गोपकुलाधिपति नन्दके नवजात शिशुका प्राणहरण करने गोकुल गया था। इस जघन्य अभिसंधिको लिये हुए वह कागरूपमें उड़ता हुआ नन्दप्राङ्गणमें जा पहुँचा। शिशुको उसने देखा और शिशुने इस काले कौवेको! दूसरे ही क्षण मानो वह पक्षी लोहपिण्ड हो और शिशुकी बँधी हुई बायीं मुट्ठीमें चमकती हुई नखराशि हो अयस्कान्तमणि-शलाका (चुंबककी नली)—इस प्रकार अविलम्ब उसके तीक्ष्ण चंगुल बालककी मुट्ठीमें जा गिरे तथा व्रजेन्द्रनन्दनने भी देखते-ही-देखते एक विचित्र खेल खेल दिया—

कंठ चाँपि बहु बार फिरायौ, गहि पटक्यौ, नृप पास परयौ।

संज्ञाशून्य काकासुर कंसके सभामण्डपमें ठीक कंसके सामने जा गिरा। एक पहरतक अथक उपचार होनेपर कहीं उसमें बोलनेकी शक्ति आयी। उसने कहा—

सुनहु, कंस! तब आइ सरयौ।
धरि अवतार महाबल कोऊ एकहि कर मेरौ गर्ब हरयौ॥
सूरदास-प्रभु कंस-निकंदन भक्त हेत अवतार धरयौ॥

काकासुरके इन शब्दोंको सुनकर ही बलमदान्ध उत्कच हँस रहा था, काकासुरको अत्यन्त भीरु और निर्बल मानकर कंसपर अपनी शक्तिका प्रदर्शन कर रहा था। यह उत्कच हिरण्याक्ष दैत्यका पुत्र है। चाक्षुष-मन्वन्तरसे भी पूर्वकी बात है—एक दिन उत्कच मुनिवर लोमशके आश्रममें जा पहुँचा। तपोवनकी शोभा इस असुरके लिये असह्य हो उठी। अपने प्रकाण्ड स्थूल शरीरके घर्षणसे उसने आश्रमकी अगणित वृक्ष-पंक्तियोंको चूर्ण-विचूर्ण कर डाला। मूक वृक्षोंपर यह अत्याचार कोमलहृदय मुनि कबतक देखते रहते। अन्तर्यामीकी प्रेरणासे वे बोल उठे—

विदेहो भव दुर्मते। (गर्गसंहिता गोलोकखण्ड)

'नीच! तू इस देहसे रहित हो जा।'

वाक्य समाप्त होते-न-होते उत्कचकी वह स्थूल काया सर्पकञ्चुककी भाँति झड़कर गिर पड़ी। समस्त बल विलुप्त हो गया। अब उसने मुनिवरकी महिमा जानी। फिर तो चरणप्रान्तमें पड़कर वह कृपाकी याचना करने लगा, अनुनय-विनय करते हुए पुनः देह-दानकी प्रार्थना करने लगा। त्रिगुणोंसे पार पहुँचे हुए ऋषिके प्रसन्न होनेमें देर ही क्या थी। वे तो पहले भी प्रसन्न ही थे। शापदानलीलाके अन्तरालमें तो छिपी थी मुनिकी अद्भुत अनुकम्पा, दैत्यके उद्धारकी सुन्दर योजना। मुनिने कहा—जाओ, चाक्षुष-मन्वन्तरमें तुम्हें वायुका शरीर प्राप्त होगा तथा वैवस्वत-मन्वन्तरमें भगवच्चरणारविन्दका स्पर्श पाकर तुम त्रिगुणपाशसे सदाके लिये मुक्त हो जाओगे। कालके प्रवाहमें बहते हुए उत्कचको आज इस घटनाकी स्मृति सर्वथा नहीं रही है, किंतु अनन्त महिमामयी भगवान्‌की लीलाशक्तिको सब कुछ स्मरण है। इन्हीं लीलाशक्तिके नियन्त्रणमें अनादिकालसे सब कुछ नियमित रूपसे यथायोग्य यथासमय होता आया है एवं अनन्तकालतक होता रहेगा। इन्हींके नियन्त्रणमें कंस एवं उत्कचकी मित्रता हुई थी और इन्हींके द्वारा आज अब अवतीर्ण हुए स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनसे मिलानेका उपक्रम भी हो रहा है, अस्तु।

उत्कचको हँसते देखकर कंसके आतङ्कभरे म्लान मुखपर आशाकी एक किरण चमक उठी। समस्त सभासदोंको लक्ष्य करते हुए वह बोला—

ब्रज भीतर उपज्यौ मेरौ रिपु, मैं जानी यह बात।
दिनहीं दिन वह बढ़त जात है, मोकौं करिहै घात॥

दनुज-सुता पूतना पठाई, छिनकहिं माँझ सँहारी।
घींचि मरोरि, दियौ कागासुर भेरैं डिग फटकारी॥

× × ×

ऐसौ कौन, मारिहै ताकौं, मोहि कहै सो आइ।
वाकौं मारि अपुनपौ राखै, सूर बजहिं सो जाइ॥

प्रज्वलित अग्निमें मानो घृताहुति पड़ गयी। कंसके वचनसे उत्कचका गर्व प्रदीप्त हो उठा। अन्य राक्षस-सेनापतियोंके मुखसे हुंकारकी बयार बह चली। अत: गर्वकी लपट बिखेरते हुए उत्कच अपने स्थानसे उठा एवं कंसके सामने हाथ जोड़कर बोला—

दोउ कर जोरि भयौ उठि ठाढ़ौ, प्रभु-आयसु मैं पाऊँ।
जाँ तैं जाइ तुरतहीं मारौं, कहौ तौ जीवत ल्याऊँ॥

कंसके हर्षकी सीमा नहीं रही। वह आसनसे उठ खड़ा हुआ तथा उत्कचकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए व्रजेन्द्रनन्दनके प्राणहरणका बीड़ा देकर उसे विदा किया। दैत्य भी उसी क्षण व्रजपुरकी ओर चल पड़ा। किंतु अभी व्रजेन्द्रनन्दनके योगीन्द्र-मुनीन्द्र-दुर्लभ चरणारविन्दके स्पर्शका सुयोग आनेमें सात पहरका विलम्ब था। अत: चलकर भी असुर पथभ्रान्त हो गया; व्रजपुरका, व्रजेन्द्रगृहका संकेत न पा सका। इससे पूर्व इसी व्रजपुरकी सीमापर बारंबार उड़कर आनेवाली पूतना सात दिन भटक चुकी है। उत्कचको तो केवल सात पहर ही भटकना है। जो हो, पथ भूला हुआ उत्कच व्रजपुरका अनुसंधान पानेके उद्देश्यसे व्रजकी परिक्रमा कर रहा है एवं व्रजेन्द्रनन्दनकी लीलाशक्ति तदनुरूप रंगमञ्चके निर्माणमें लगी है।

शरद्-हेमन्तकी संधिका प्रभात हुआ है। मानो निशा-सुन्दरी व्रजेन्द्रनन्दनका दर्शन करने आयी थीं, चार पहर दर्शनामृतका पान करती रहीं; और भी करतीं, पर अब तो सूर्यदेव यशोदानन्दनको देखने आ रहे थे। इसीसे वे लज्जावश अन्तरिक्षमें जा छिपीं; किंतु अदर्शनके दु:खसे खिन्न होकर जाते समय छाती पीटती जा रही थीं, इससे उनके गलेका मुक्ताहार टूट पड़ा और मुक्ताके दाने सर्वत्र बिखर गये—इस तरह मोती-जैसे ओसकण सर्वत्र पड़े चमक रहे हैं। क्रमश: सूर्योदय होता है। व्रजके वनप्रान्तरकी ओटसे छन-छनकर आती हुई किरणोंके आलोकसे नन्दभवन उद्भासित होने लगता है। विकसित कुरण्टक एवं कुरबक पुष्पोंका पराग लेकर मन्द समीर प्रवाहित हो रहा है। इस समय उल्लासमें भरे व्रजेन्द्र तोरणद्वारपर खड़े हैं, ब्राह्मणोंको निमन्त्रण भेज रहे हैं। आज नन्दनन्दनका जन्मनक्षत्र है। नाक्षत्र मासकी गणनासे नन्दनन्दन इस समय तीन मासके हो चुके हैं।

व्रजेन्द्रगेहिनी जन्मनक्षत्र-उत्सवकी व्यवस्थामें लगी हैं। ब्राह्मण आयेंगे, पुत्रका अभिषेक होगा, विराट् ब्राह्मण-भोजन होगा, फिर गोप-बन्धु-बान्धवोंकी गोष्ठी होगी, उनका सत्कार होगा—इसकी सामग्री एकत्र करनेमें रोहिणीजीसहित वे स्वयं जुटी हुई हैं। पर यह करते हुए भी नन्दरानीका मन तो अपने पुत्रके पास है। इसीलिये एक वस्तुका निरीक्षण समाप्त होते ही दौड़कर वे पुत्रके पास पहुँच जाती हैं, पुत्रको देखकर भंडारमें चली जाती हैं, फिर कुछ देर बाद लौट आती हैं तथा अपने हृदयधनको सुप्रसन्न निहारकर पुन: रोहिणीजीकी सहायता करने चल पड़ती हैं। यशोदानन्दनकी रक्षापर इस समय धात्रियाँ हैं, जो उनकी शय्याको चारों ओरसे घेरकर बैठी हैं।

शय्यापर उत्तानशायी होकर नन्दनन्दन किलक रहे हैं; धात्रीगण गीत गा-गाकर, झुनझुने बजा-बजाकर उन्हें किलका रही हैं। हठात् किलकते हुए नन्दनन्दनने अपने-आप दाहिनी ओर करवट ले ली। फिर तो कहना ही क्या है, अपने-आप सुकुमार नन्दकुमारको करवटके बल सोये देखकर धात्रियोंके हृदयमें आनन्दका सागर उमड़ पड़ा। एक ही साथ धात्रियाँ हर्षकी तुमुल ध्वनिसे प्राङ्गणको निनादित करके नाच उठीं। कुछ व्रजरानीके पास दौड़ीं, उन्हें यह परम शुभ संवाद सुनाया। सुनते ही नन्दरानीका रोम-रोम भी नाच उठा। वे दौड़ी आयीं। पुत्रको उठाकर हृदयसे लगा लिया। उसका मुख-चुम्बन करके सुख-समुद्रमें डूब गयीं, भावकी तरंगोंमें बह चलीं। इतनेमें यह शुभ समाचार सुनकर नन्दराय भी

वहीं आ पहुँचे। उन्हें देखते ही अन्तर्हृदयमें वर्तमान पुत्रमङ्गलकी चिरवर्द्धनशील लालसा मानो व्रजरानीके होठोंपर आ गयी। व्रजरानीने इस औत्थानिक (करवट बदलनेके) उत्सवपर महान् आयोजन करनेका मनोरथ प्रकट किया। व्रजेन्द्र भला असम्मत क्योंकर होते? बस, व्रजरानीने तुरंत व्रजपुरकी समस्त गोपाङ्गनाओंको निमन्त्रित करनेका आदेश दे डाला। जन्मनक्षत्रका उत्सव महामहोत्सवके रूपमें परिणत हो गया।

शयनं पार्श्वेनोपपीडं शयानममुं सुकुमार-कुमारापीडमकस्माद्विलोक्य तद्वृत्ते धात्रीभिर्मात्रे निवेदितमात्रे सातिमात्रानन्दकन्दलिता निजनन्दन-मङ्गलातिशयस्पृहिणी श्रीमन्नन्दक्षितीशगृहिणी भर्तुराज्ञां सुज्ञातां सम्भूय भूयः सर्वाः समाहूय तमेव महोत्सवं महामहोत्सवं चकार।

(श्रीगोपालचम्पूः)

नन्दद्वारपर शङ्खध्वनि होने लगी। भेरी, वेणु, वीणा, मृदङ्ग बज उठे। मङ्गल-गान करती हुई व्रजाङ्गनाएँ नन्दप्रासादमें एकत्र होने लगीं। धान्य, दूर्वा, हरिद्रा, चन्दन आदि माङ्गलिक द्रव्य हाथमें लिये गोपोंका दल उमड़ पड़ा। वेदज्ञ ब्राह्मण भी आ पहुँचे। व्रजेन्द्रने उन ब्राह्मणोंका चरणप्रक्षालन किया। फिर काञ्चनपात्रोंमें प्रचुर अन्नराशि, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, बहुमूल्य रत्न भूषण, मणिमालाएँ एवं प्रत्येक ब्राह्मणकी रुचिके अनुरूप अगणित गोदान अर्पण करते हुए उनकी पूजा की। व्रजेन्द्रकी पूजासे संतुष्ट ब्राह्मण कलशस्थापन आदि करते हुए यथाविधि देवपूजन-हवनमें प्रवृत्त हुए।

इधर गीत गाती हुई पुरमहिलाओंसे वेष्टित व्रजरानी अपने पुत्रको स्नान करा रही हैं। पुत्रके नील कलेवरको पहले हल्दी-तेलसे उबटती हैं, फिर किंचित् उष्ण वारिसे सर्वाङ्ग-स्नान कराती हैं। अपने सुकोमल आँचलसे ही अङ्ग सम्मार्जन करती हैं। पश्चात् गोदमें लेकर शिशुके प्रशस्त भालपर गोरोचनसे तिलक लगाती हैं। तदनन्तर अपनी अनामिकाका अच्छी तरह जलसे प्रक्षालन करके, पोंछकर उसीसे काजल उठाकर अभी-अभी विकसित हुए नीलोत्पल-जैसे नेत्रोंको आँज देती हैं। आँजते समय यशोदानन्दन रोने लगते हैं, जननी उत्फुल्ल नेत्रोंसे एक बार निहारकर मुखमें स्तनाग्र दे देती हैं। उस समय नन्दनन्दनके दलित-नीलकान्त-मणिविनिन्दित अङ्गोंकी शोभा देख-देखकर गोपाङ्गनाएँ सुखातिरेकसे आत्मविस्मृत-सी होने लगती हैं।

ब्राह्मण आते हैं। हाथोंमें कुशपुञ्ज लेकर, उसे शान्तिकुम्भ-जलसे आर्द्र बना-बनाकर मन्त्रोच्चारण करते हुए यशोदानन्दनके अङ्गोंका जलबिन्दुसे प्रोक्षण करते हैं। प्रोक्षणके समय ही नन्दनन्दनके नेत्रोंमें निद्राका संचार होने लगता है, उनके नेत्र निमीलित हो जाते हैं। वे दोनों हाथोंसे जननीका स्तन धारण किये हुए दुग्ध—वात्सल्य-प्रेमपीयूष पान करने लगते हैं। पर कुछ ही क्षणोंमें हाथ शिथिल एवं अङ्ग अवश हो जाते हैं। माताकी गोदमें रहते हुए ही नन्दकुमारको निद्रादेवी अपनी गोदमें ले लेती हैं। मानो निद्रासुन्दरीने विचार किया—श्रीनाथके इस औत्थानिक मङ्गल-समारोहमें सभी गोपसुन्दरियाँ आयी हैं, सुख लूट रही हैं; फिर उस सुखका उपयोग मैं भी क्यों न कर लूँ? यह सोचकर वे धीरे-धीरे आयीं और नन्दकुमारके नेत्रोंका स्पर्शसुख लेती हुई उन्होंने उनको अपनी गोदमें उठा लिया—

श्रीनाथकौत्थानिकमङ्गलेऽस्मिन् प्राप्ताः समग्रा अपि गोपवध्वः।
ग्राह्यं सुखं तन्न कथं मयेति निद्रा शनैरीशदृशं किमागात्॥

(श्रीहरिसूरिविरचितभक्तिरसायनम्)

प्राङ्गणके एक भागमें एक अत्यन्त बृहदाकार शकट है। उसके नीचे शकटस्तम्भोंसे सम्बद्ध एक अतिशय सुन्दर दोलिकामञ्च (पलना) टँगा है। उसके पाये प्रवालनिर्मित हैं, पट्टियाँ मरकतमणि-रचित हैं, उसमें अरुण क्षौम (लाल रेशम)-की डोरी एवं फीते हैं, तूलपुष्ट आस्तरण (रूईभरी तोषक) है, चारों ओर तूलनिर्मित उपधान (तकिया) लगे हैं। इसी पलनेपर जननी यशोदा पुत्रको धीरेसे जाकर सुला देती हैं। जननी जब इस ओर आ रही थीं, तब उनके पीछे-पीछे अतिशय कौतूहलवश कौमार-वयके कतिपय

गोप-शिशु चले आये थे। वे सब पालनेको घेरकर खड़े हो जाते हैं। मैया आदेश करती हैं—'पुत्रो! तुम सब बैठ जाओ, धीरे-धीरे इसे झुलाना; पर जब मेरा यह नीलमणि जाग जाय तो मुझे बुला लाना, भला।' माताका यह आदेश कुमार शिशुओंको परम अभिलषित था। वे तो आये ही थे इसलिये कि किसी प्रकार इस साँवरेके पास बैठनेका उन्हें अवसर मिल जाय। वे सब-के-सब तोतली बोलीमें बोल-बोलकर माताको आश्वासन देते हैं—हाँ-हाँ, हमलोग ऐसा ही करेंगे।' उनकी बात सुनकर जननी हँसती हुई चल पड़ती हैं, पर उसी स्थानपर जाकर बैठती हैं, जहाँसे वे निरन्तर पलनेको देखती रह सकें।

अचिन्त्यलीलामहाशक्ति-नटीने पट-परिवर्तन किया। व्रजेन्द्रनन्दनकी आजकी लीलाका द्वितीय दृश्य आरम्भ हुआ। एक ही साथ चार कार्य हुए। व्रजेशमहिषीके मनपर तो समागत अतिथियोंकी सेवा-शुश्रूषा—स्वागत-सत्कारका रंग चढ़ने लगा। कुमार बालक यशोदानन्दनकी ओर दृष्टि रखनेपर भी बाल-सुलभ चापल्यवश शकटके नीचेसे बाहर निकल आये। यशोदानन्दनकी निद्रा भङ्ग हो गयी और पथभ्रान्त उत्कच दैत्य पथ पा गया। उसने देखा—सर्वथा सामने आनन्द-कोलाहलसे मुखरित नन्दप्रासाद ऊँचे आकाशमें सिर उठाये अवस्थित है। व्रजेन्द्रनन्दनके व्रजमें आनेके दिनसे अब तीन मास हो गये हैं; निरन्तर इन तीन मासोंमें नित्य नये-नये उत्सव, गोप-गोपियोंकी हर्षध्वनि एवं व्रजेश-पुत्रके दर्शनार्थी समागत समस्त पुरवासियोंके उत्कण्ठा-परमाणुओंसे अनुप्राणित प्रासादका अणु-अणु आनन्दकी किरणें बिखेर रहा है। फिर आज तो नन्दपुत्रके औत्थानिक एवं जन्मनक्षत्र-उत्सवका समारोह है। इस समय प्रासादकी शोभा, प्रासादके आनन्दका तो कहना ही क्या है।

वायुरूपसे ही उत्कच वहाँ जा पहुँचता है, जहाँ व्रजेन्द्रनन्दन शकटके नीचे एक अभिनव बालभङ्गिमाका प्रकाश करते हुए अपनी लीला-माधुरीका अपने-आप रस ले रहे हैं। उनकी निद्रा, आलस्य हट गया है। एकान्त एकाकी दोलिकापर्यङ्कपर विराजित हैं। पहले कुछ देर हस्त एवं चरणोंका मृदु-मृदु संचालन करते रहे, पर्यङ्ककी अरुणाभ पट्टडोरिकाकी ओर देख-देखकर किलकते रहे। फिर किलकते-किलकते अपनी मृदु सुकोमल अँगुलियोंसे चरणका अँगूठा पकड़ लेते हैं तथा धीरे-धीरे उसे अपने मुखमें रखकर चूसने लगते हैं। वे यहाँ इस समय सचमुच अकेले ही हैं। दूरपर यद्यपि कुमार शिशु खड़े रहकर उनकी ओर देख रहे हैं, फिर भी वास्तवमें इस अद्भुत बाल्यभावका रस वे स्वयं ही ग्रहण कर रहे हैं—

कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालनें अकेले, हरषि-हरषि अपनें रँग खेलत॥

मानो सर्वज्ञशिरोमणि पूर्णकाम महामहिम स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनमें अपने अङ्गुष्ठक्षरित रसकी महिमाका तत्त्व जाननेकी तीव्र इच्छा, उस रसके पानका अदम्य लोभ जाग्रत् हो उठा है और वे इसे पी-पीकर प्रसन्न हो रहे हैं—

जे चरनारबिंद श्री भूषन उर तैं नैंकु न टारति।
देखौं धौं का रस चरननि मैं, मुख मेलत करि आरति॥
जा चरनारबिंद के रस कौं सुर-मुनि करत बिषाद।
सो रस है मोहू कौं दुरलभ, तातैं लेत सवाद॥

इसी समय सर्वथा सबसे अलक्षित वायुकी लहरके समान उत्कच नन्दप्राङ्गणमें जा पहुँचता है; शकटके नीचे किलकते हुए, अङ्गुष्ठ-रसपानमें संलग्न नन्दपुत्रको देखने लग जाता है। वह सोचता है—

स पूतनापोथकोऽयं पोतो विशङ्कटशकटाधस्तादास्ते साक्षान्मृत्युं विधातुं तु न कोऽपि जन्तुरमुष्य शक्यतीति लक्ष्यते। छद्मरूपसचतया च पूतना संस्थिता। तस्मादमूर्त एव सन्नत्र पूर्तये भवानीति। (श्रीगोपालचम्पूः)

'पूतनाका प्राण-हरण करनेवाला बालक यही है। इस महान् शकटके नीचे अवस्थित है। इसके नेत्रोंके सामने जाकर इसके प्राण ले ले, ऐसा तो किसी भी प्राणीके लिये सम्भव नहीं दीखता तथा छद्मरूप धारण करनेके कारण पूतना मर चुकी है, अतः छद्म भी मेरे लिये निरापद नहीं है। इसलिये इसी अव्यक्त

रूपमें ही रहकर मैं अपने उद्देश्यकी सिद्धि करूँ।'

इस विचारसे उत्कच किसी अन्य आसुरी मायाका विस्तार न करके चुपचाप अलक्षित रूपसे उस शकटमें ही आविष्ट हो गया। उसने निश्चय किया—'अपने विशाल शरीरभारसे धीरे-धीरे शकटको दबा दूँगा, भारसे दबकर शकट-चक्र (पहिये) पृथ्वीमें धँस जायँगे, शकटका पृष्ठ देश (गाड़ीके नीचेका हिस्सा) इस बालकको पीसता हुआ धरातलसे जा लगेगा।' उत्कचको यह पता नहीं है कि इसी बालकके एक क्षुद्र संकल्पसे अनन्त ब्रह्माण्ड एक क्षणमें पिस जाते हैं; ऐसे बालकको पीस डालनेकी कल्पना कितनी हास्यास्पद है?

इधर व्रजेन्द्रनन्दनको एकाकी किलकते, खेलते हुए बहुत समय हो चुका है। अब वे क्षुधार्त्त हो गये हैं, स्तनपानकी उन्हें अतिशय त्वरा है। पर जननी तो निकट हैं नहीं तथा रक्षापर नियुक्त कुमार बालकोंको भी यह विस्मृत हो चुका है कि नन्दनन्दनके जागते ही जननी यशोदाको बुला लाना था। वे तो दूर खड़े-खड़े नन्दनन्दनका किलकना देख रहे हैं, उन सबको बड़ा रस मिल रहा है, वे अपनी सारी चञ्चलता भूलकर निर्निमेष नयनोंसे नन्दनन्दनकी ओर देखते हुए मन्त्रमुग्ध-से खड़े हैं। और तो क्या, यशोदानन्दन क्षुधासे पीड़ित होकर, जननीको अनुपस्थित पाकर अब जब क्रन्दन प्रारम्भ करते हैं, तब भी उन कुमार बालकोंको समुचित कर्तव्यका ज्ञान नहीं हो पाता। बल्कि वे इस क्रन्दनकी मधुरिमासे और भी विमुग्ध हो जाते हैं। स्तनार्थी यशोदानन्दन रो रहे हैं, कुमार बालक इसे स्पष्ट सुन-जान भी रहे हैं; फिर भी एक अद्भुत परमानन्दकी अनुभूतिसे उनके अङ्ग अवश हो गये हैं। वे चुपचाप निष्पन्द देखते ही रह जाते हैं। अस्तु,

उत्कचने अब शीघ्रता की; क्योंकि शिशुका क्रन्दन सुनकर जननी एवं नन्दादि गोप कहीं आ न जायँ। वह तुरंत शकटपर अपना महान् भार डालना प्रारम्भ करता है। 'चरमर-चरमर' शब्द करता हुआ शकट कम्पित होने लगता है। किसीको इसके रहस्यका ज्ञान नहीं, पर व्रजेन्द्रनन्दन सब कुछ जानते हैं। अवश्य ही यह भी सत्य है कि जानकर भी वे इस समय अनजान बने हैं। वात्सल्यरस-आस्वादनकी उत्कट लालसासे अत्यन्त अभिभूत हो रहे हैं, पर उनकी चिरसङ्गिनी अघट-घटना-पटीयसी योगमाया नित्य ही सेवाकी बाट जोहती रहती है। अब अवसर उपस्थित हुआ है, व्रजेन्द्रनन्दनके वात्सल्यरस-आस्वादनमें व्याघात न हो, उनकी शिशूचित बाल्यमाधुरी अक्षुण्ण बनी रहे, किसी भी व्रजवासीकी किंचित् भी क्षति न हो और उत्कचका उद्धार हो जाय—ये चार सेवाएँ हैं। अतः उत्कचके शकटमें आविष्ट होते ही योगमाया भी इन सब सेवाओंका भार अपने ऊपर लेकर नन्दनन्दनके वाम मृदुलचरणमें व्यक्त हो जाती हैं। शकटके 'चरमर-चरमर' शब्दको सुनकर वे तो हँस रही हैं। पर वात्सल्यरसपानलोलुप व्रजेन्द्रनन्दन जननी यशोदाके स्तनपानके लिये रो रहे हैं!

क्षुधासे आतुर हुए यशोदानन्दन अब क्रन्दन करते हुए पैर पटकने लगते हैं। पर इस करुणाक्रन्दनका किसी ओरसे भी कोई उत्तर नहीं मिलता। जननी इसे सुनतक नहीं पातीं। आगत गोप-गोपाङ्गनाओंके स्वागतमें उनका मन इतना संलग्न हो गया है—नहीं-नहीं, किसी अचिन्त्य प्रेरणासे संलग्न कर दिया गया है कि वे पुत्रके करुणाक्रन्दनको सुन सकती ही नहीं। इसीलिये मानो स्वयं योगमाया ही व्रजेन्द्रनन्दनकी यह परम आर्ति देखकर, नन्दनन्दनकी व्याकुलता सहनेमें असमर्थ होकर, माताको सूचना देनेके उद्देश्यसे तथा इसी बहाने उत्कच दैत्यका उद्धार करनेके लिये नन्दनन्दनके चरणका शकटसे स्पर्श करा देती हैं। हठात् नन्दनन्दन चरण-संचालन करते हुए उसे ऊपरकी ओर उठा देते हैं और वह शकटसे छू जाता है। उनके वे मृदुलचरण बढ़ नहीं गये, उनका परिमाण ज्यों-का-त्यों रहा, कोई भी आश्चर्यजनक अद्भुत परिवर्तन नहीं हुआ; फिर भी शिशुओंने स्पष्ट देखा—नन्दनन्दनने चरण उछाला है और चरण शकटसे जा लगा है।

जैसे पूतना आकाशमें उछल पड़ी थी, वैसे ही नन्दनन्दनके नवपल्लव-सुकोमल शिशूचित नन्हेसे चरणके लगते ही शकट अकस्मात् आकाशमें उछला और अत्यन्त घोर शब्द करता हुआ उलटकर यशोदानन्दनसे कुछ ही दूर हटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। शकटपर दधि, दुग्ध, नवनीत आदिसे पूर्ण अनेकों बड़े-बड़े कांस्यपात्र रखे थे। वे सभी चूर्ण-विचूर्ण हो गये। और तो क्या, शकटके पहिये निकलकर दूर जा गिरे, धुरी अलग होकर पड़ गयी और जूआ टूटकर खण्ड-खण्ड हो गया—

अधःशयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ७। ७)

व्रजेन्द्र एवं उपनन्द दौड़ पड़े। उनके पीछे उत्सवमें आयी हुई गोपमण्डली 'अरे यह क्या हुआ! यह घोर शब्द कैसा? अँय! यह तो शकट उलट गया! आह, अकस्मात् यह कैसे? हाय-हाय, नन्दनन्दन उसके नीचे था, नारायण! नारायण! त्राहि, त्राहि, प्रभो! दयासिन्धो! करुणामय! जगत्पते! रक्षा करो, रक्षा करो।' इस प्रकार आर्तनाद करती हुई दौड़ पड़ी। गोपाङ्गनाएँ भी पुनः पूतना-जैसी राक्षसीकी आशङ्कासे 'दौड़ो-दौड़ो, यशोदानन्दनको उठा लो, राक्षसी उड़ने न पाये।' ऐसा चीत्कार करती हुई, जननी जहाँ पुत्रको सुला गयी थीं, उस ओर दौड़ने लगीं। सबसे प्रथम व्रजेन्द्र जा पहुँचे। लपककर, पैर पटक-पटककर रोते हुए पुत्रको उठा लिया। वे अतिशय व्याकुलताभरी दृष्टिसे उसके सारे अङ्गोंको देखने लगे—कहीं चोट तो नहीं आयी है? किंतु कहीं कोई भी क्षतिचिह्न नहीं मिला। व्रजेन्द्र गद्गद कण्ठसे '**नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते**' कहते हुए पुत्रको हृदयसे लगा लेते हैं। साथ ही व्रजेश्वरीकी गोदमें पुत्रको दे देनेके लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हैं। पर व्रजेश्वरी तो वहाँ हैं ही नहीं, वे तो दो पग चलकर ही भग्नहृदय-सी होकर गिर पड़ी थीं। व्रजेश्वरको कुछ दूरपर खड़ी अत्यन्त उद्विग्ना रोहिणीजी दिखायी पड़ती हैं, श्रीरोहिणीके नेत्रोंसे अश्रुका निर्झर झर रहा है।

व्रजेन्द्रका मनोभाव श्रीरोहिणीजीपर प्रकट हो जाता है। वे दौड़कर व्रजरानीके पास जाती हैं। उनके मूर्च्छितप्राय शरीरको गोदमें लेकर बारंबार उनके कानमें कहती हैं—'बहिन! नीलमणि कुशलसे है, सर्वथा कुशल है; यह देखो, नीलमणिको गोदमें लिये व्रजेन्द्र आ रहे हैं।' अन्य व्रजाङ्गनाएँ भी तुमुल हर्षध्वनि करती हुई व्रजरानीको आश्वासन देती हैं। इन वाक्योंसे नन्दरानीमें चेतनाका संचार हो जाता है। वे नेत्र खोलकर देखती हैं। इसी समय व्रजेन्द्र पुत्रको गोदमें लिये आ पहुँचते हैं। जननी पुत्रको देख लेती हैं। फिर भी उनका हृदय दुःखसे इतना टूट-सा गया है कि शरीरमें उठनेतककी शक्ति नहीं रही है। हाँ, पुत्रको देखते ही नेत्रोंसे अश्रुका प्रवाह बह चलता है तथा फूट-फूटकर रोती हुई व्रजरानी कहने लगती हैं—

बालो मे नवनीतताश्च मृदुलस्त्रैमासिकोऽस्यान्तिके
हा कष्टं शकटस्य भूमिपतनाद्भङ्गोऽयमाकस्मिकः।
तच्छ्रुत्वापि न मे गतं यदसुभिस्तेनास्मि वज्राधिका
धिङ् मे वत्सलतामहो सुविदितं मातेति नामैव मे॥
यन्निष्पातजवैर्मही विचलिता यस्यारवैः सर्वतः
सर्वेऽमी बधिरीकृता निपतिते तस्मिन् समीपे शिशुः।
लब्ध्वा भूरिभयं यदेष तदितः स्मृत्वापि जीवत्यहो!
महुर्दैवफलं महद् व्रजपतेर्भाग्यैः कियद् वार्यताम्॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

'हाय-रे-हाय! मेरा यह नीलमणि नवनीतसे भी अधिक सुकोमल है, केवल तीन महीनेका है और इसके निकट शकट हठात् भूमिपर गिरकर टूट गया। यह बात सुनकर भी मेरे प्राण न निकले, मैं उन्हीं प्राणोंको लेकर अभीतक जीवित हूँ; इससे तो यही प्रमाणित होता है कि मैं वज्रसे भी अधिक कठोर हूँ, मैं कहलानेमात्रको माता हूँ; मेरे ऐसे मातृत्वको, मातृवत्सलताको धिक्कार है। ओह! शकट-पतनका वह कितना घोर शब्द था। यहाँ जितने थे, सबके कान बहरे हो गये। पतनके वेगसे पृथ्वी काँप उठी तथा वह सर्वथा मेरे नीलमणिके समीप गिरा! आह! उसे

कितना अधिक भय लगा होगा। वह देखो, स्पष्ट उसका मुख कह रहा है, अभी भी शकट-पतनको याद करके वह डर रहा है, पर फिर भी जीवित है, यह कितना आश्चर्य है! निश्चय ही मेरे शिशुपर बार-बार जो ऐसी विपत्ति आ रही है, वह मेरे दुर्भाग्यका ही महान् फल सामने आ रहा है; इसकी जो कुछ भी रक्षा हो रही है, वह तो व्रजेशके भाग्यसे हो रही है।'

व्रजरानीका यह दैन्यभाव समस्त उपस्थित गोप-गोपियोंके नेत्रोंमें भी अश्रुसंचार कर देता है। व्रजेन्द्र तो पहलेसे ही रो रहे थे। रोते हुए ही वे पुत्रको नन्दरानीकी गोदमें रख देते हैं। नन्दरानी अपने नीलमणिको हृदयसे लगा लेती हैं। मानो यशोदानन्दनकी क्षुधा अपने तात नन्दरायका अनन्त-वात्सल्य-पूरित कर-स्पर्श पाकर कुछ शान्त हो गयी; इसीलिये नन्दनन्दनको पिताने जिस क्षण पलनेसे उठाया, उसी समय उनका क्रन्दन शिथिल पड़ गया था। अब जननीके हृदयसे लगनेपर तो वे चुप हो जाते हैं। फिर भी रह-रहकर रो उठते हैं, रो-रोकर अपने मृदु करपल्लवोंको नचा-नचाकर स्तनदान करनेका संकेत करते हैं। किंतु जननीको भय है—'निश्चय ही पुत्रमें किसी ग्रह, राक्षसका आवेश हुआ है; इसीसे वह रो उठता है। इतना कभी नहीं रोता था। शकटमें कोई आवेश तो था ही, अन्यथा अपने-आप उछलकर उलटा होकर वह कैसे गिर जाता?' इसीलिये जननी तुरंत स्तनदान नहीं करतीं। अभी दो घड़ी पूर्व जो ब्राह्मण जन्म-नक्षत्रका अभिषेक कर चुके हैं, जो दैवयोगसे अभी भी नन्दभवनमें ही हैं, उन्हें ही व्रजरानी बुलाती हैं। वे अतिशय शीघ्रतासे रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ करते हुए स्वस्त्ययन करते हैं, रक्षाबन्धन करते हैं। इस तरह ग्रहशान्ति हो जानेपर जननी यशोदा पुत्रको स्तन्यपान कराने लगती हैं। पुत्रको प्रसन्नतापूर्वक स्तन्यपान करते देखकर जननीका रोम-रोम पुनः आनन्दसे पुलकित हो उठता है।

व्रजेन्द्र शकटकी ओर चले जाते हैं। इस प्रकार शकट अपने-आप उलटकर कैसे जा गिरा, इसपर उपनन्द आदि सभी प्रमुख गोपोंसे मिलकर विचार करते हैं, किंतु कोई भी युक्तिसंगत कारण ढूँढ़ नहीं पाते। वे कुमार शिशु अभी भी शकटके पास ही इधर-उधर घूम रहे थे। उपनन्द आदि इन्हें पहले भी शकटके पास खड़े देख चुके हैं। उन्होंने उन बालकोंसे पूछा। उत्तरमें सभी शिशुकुमारोंने नन्दनन्दनकी ओर अँगुलीसे संकेत कर दिया। एक किञ्चित् वयस्क अतिशय चञ्चल बालक सामने आया। उत्साह एवं त्वरावश उसकी वाणी अस्फुट हो गयी, फिर भी दाहिने हाथसे अपने वक्षःस्थलको बार-बार स्पर्श करता हुआ अतिशय उच्च कण्ठसे वह बोल उठा—

म म मम पापार्श्वतः श्रूयताम्।
य य य यदा च च चरणमुत्थापितवानयम्॥
त त त तदा ते तेन स्पृष्टमात्रो
ड्डि ड्डि ड्डि ड्डि डीन इवोद्वृत्तः सोऽयं श श शकटः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

'मुझसे सुन लो—जब नन्दनन्दनने चरण उठाया, तब शकटसे चरण छू गया। उससे छूते ही शकट उड़ा हुआ-सा होकर उलट गया।'*

इसके बोलनेपर फिर तो सभी बालक बोल उठे—

रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः।

(श्रीमद्भा० १०। ७। १)

'इस रोते हुए बालकने पैरसे गाड़ी उलट दी है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।'

---

* बालककी वाणी रुक रही है। जब वह 'मम' (मेरे) कहना चाहता है तो 'म म मम' उच्चारण हो जाता है। जब 'पार्श्वतः' (पास) कहने जाता है तो 'पापार्श्वतः' बोल जाता है। 'यदा' जब बोलता है, तब 'य य य यदा' कह देता है। इसी प्रकार 'चरणमुत्थापितवान्' (चरण उठाया) का 'च च चरणमुत्थापितवान्', 'तदा' (तब) का 'त त त तदा', 'तेन' (उससे) का 'ते तेन', 'डीनः' (उड़ा हुआ)-का 'ड्डि ड्डि ड्डि ड्डि डीनः, एवं 'शकटः' (गाड़ी) का 'श श शकटः' उच्चारण हो रहा है।

किंतु बालकोंकी इन बातोंपर व्रजवासी सर्वथा विश्वास न कर सके। वे सोचते हैं—'यह तो सर्वथा असम्भव है। इन मृदुल शिशु-चरणोंकी चोटसे गाड़ी उलट जाय, यह भी विश्वास करनेयोग्य बात है?'

उपनन्दकी आज्ञासे शकटमें चक्र-युगंधर (पहिये-हरसा) आदि पुनः लगा दिये गये। उसे सब तरहसे ठीक करके अत्यन्त बलिष्ठ गोपोंने खींचकर पुनः पूर्ववत् स्थापित कर दिया। अन्य सामग्रियाँ भी उसपर रख दी गयीं। इससे निवृत्त होकर व्रजेन्द्रने अतिशय उल्लासपूर्वक पुनः वेदमन्त्रोंसे परिशुद्ध, पवित्र ओषधियोंसे युक्त जलसे ब्राह्मणोंद्वारा अपने पुत्रका अभिषेक कराया। पुनः शान्ति, स्वस्त्ययन-पाठ हुए, हवन हुए। पुनः सर्वगुणशालिनी, अतिशय पयस्विनी, क्षौमवस्त्र-हेममाला-पुष्पमालाओंसे विभूषित अगणित गायें व्रजेशने ब्राह्मणोंको दानमें दीं। व्रजेशकी सेवासे संतुष्ट हुए ब्राह्मण नन्दनन्दनपर आशीर्वादकी वर्षा करते हैं। आशीर्वाद सुन-सुनकर व्रजेशका हृदय हर्षसे नाच उठता है; क्योंकि उनके मनमें यह दृढ़ विश्वास है, वेदार्थतत्त्वज्ञ नारायण-चरणारविन्दानुरागी ब्राह्मणोंके मुखसे निस्सृत आशीर्वाद कभी निष्फल हो ही नहीं सकते, यह परम सत्य है—

विप्रा मंत्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ७। १७)

विशुद्धप्रेम-परिभावित-चित्त गोपोंने, गोपाङ्गनाओंने यद्यपि शकटके पतनका, उत्कच दैत्यके इतिवृत्तका कोई अनुसंधान नहीं पाया, फिर भी अन्तरिक्षमें अवस्थित देवगण जय-जयकारकी ध्वनि करने लगे। बालीलाधारी गोलोकविहारीका एक अद्भुत कृत्य देखकर वे नाच उठे; क्योंकि शकट गिरते ही उन्होंने स्पष्ट देख लिया—

चूर्णं गतेऽथ शकटे पतिते च दैत्ये त्यक्त्वा प्रभञ्जनतनुं विमलो बभूव।
नत्वा हरिं शतहृयेन रथेन युक्तो गोलोकधाम निजलोकपतिं जगाम॥

(गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड)

'शकट गिर पड़ा। उसकी चोटसे उत्कच चूर्ण-विचूर्ण हो गया। वायु-देह छोड़कर सर्वथा निर्मल हो गया। दिव्य देहसे बालक्रीड़ासक्त गोलोकविहारी श्रीहरिको उसने प्रणाम किया। प्रणाम करके दिव्यातिदिव्य परमदिव्य चिदानन्दमय शत-अश्व-संयुक्त विमानपर आरूढ़ होकर व्रजेन्द्रके निजलोक गोलोकको चला गया।'

शकटासुर (उत्कच)-को ऐसी परम गति देकर भी व्रजेन्द्रनन्दन तो उस समय भी बाल्यलीलामाधुरीका रस लेते हुए पैर पटक-पटककर रो रहे थे। नन्दनन्दनको ऐसे ऐश्वर्यविहीन परम पावन लीलारसका वितरण करते देखकर देवगण विमुग्ध हो गये।

उस दिन फिर व्रजेश्वरीने अपने नीलमणिको क्षणभरके लिये भी गोदसे नहीं उतारा। गोदमें लिये हुए ही वे उत्सवका संचालन करती रहीं। केवल संध्या-समय आधी घड़ीके लिये रोहिणीजीकी गोदमें नीलमणिको लिटाकर व्रजेशकी संध्याकालीन पूजाकी, नारायणसेवाकी व्यवस्था करने गयीं और समाधान करके शीघ्र लौट आयीं। जब व्रजेन्द्रके नारायण-मन्दिरमें घण्टा-शङ्ख-ध्वनि होकर आरती समाप्त हो जाती है तब व्रजरानी पुत्रको लिये शयनागारमें चली जाती हैं, पुत्रको सुलाने लगती हैं—

जसुदा मदनगुपाल सोवावै।
देखि सयन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस-बिरंचि भ्रमावै॥
असित-अरुन-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै।
जनु रबिगत संकुचित कमल जुग, निसि अलि उड़न न पावै॥
स्वास उदर उसासित यौं, मानौ दुग्धसिंधु छबि पावै।
नाभि-सरोज प्रगट पदमासन उतरि नाल पछितावै॥
कर सिर तर करि स्याम मनोहर अलक अधिक सो भावै।
सूरदास मानौ पन्नगपति प्रभु ऊपर फन छावै॥

श्रीकृष्णका बलरामजी तथा गोपबालकोंके साथ मिलन-महोत्सव, श्रीगर्गाचार्यके द्वारा दोनों कुमारोंका नामकरण-संस्कार

नन्दप्रासादके अन्तर्गत ही श्रीरोहिणीका आवासगृह है, किंतु उस गृहकी रचना इतनी कौशलपूर्ण है कि किसी आगन्तुकके लिये हठात् उसके अन्तर्देशमें होनेवाली घटनाका संकेत पा लेना असम्भव नहीं तो अत्यन्त ही कठिन है। इसीलिये यद्यपि यशोदानन्दनके आविर्भावके पूर्व ही रोहिणीतनयका जन्म हो चुका है, फिर भी अन्तरङ्ग गोप-गोपाङ्गनाओंके अतिरिक्त अन्य सब व्रजवासियोंने उन्हें देखातक नहीं है। और तो क्या, जिस दिन रोहिणीतनय भूमिष्ठ हुए, उस दिन तो केवल नन्द-उपनन्द आदि गोप, यशोदा-उपनन्दपत्नी आदि गोपाङ्गनाएँ— निकटतम व्रजेन्द्रपरिवार तथा नाल-छेदन करनेवाली धात्री एवं जातकर्म-संस्कार करनेवाले ब्राह्मण ही जान पाये थे, देख पाये थे कि वसुदेवपत्नी रोहिणीजीने एक अतिशय सुन्दर शिशु प्रसव किया। उस समय उस शिशुकी शोभा देखते ही बनती थी—

शुभांशुवक्त्रं तडिदालिलोचनं नवाब्दकेशं शरदभ्रविग्रहम्।
भानुप्रभावं तमसूत रोहिणी सत्तच्च युक्तं स हि दिव्यबालकः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

समुदित चन्द्रके समान तो उसका मुख है, विद्युत्-रेखा-जैसी शोभा नेत्रोंकी है, उसके सिरपर नव-जलधर-कृष्ण केश हैं, समस्त अङ्गोंकी आभा शारदीय शुभ्र मेघके समान है, वह सूर्यके समान दुष्प्रधर्ष तेजशाली है। ऐसे परम सुन्दर बालकको श्रीरोहिणीने जन्म दिया है। बालकका इस तरह शोभासम्पन्न होना सर्वथा उपयुक्त ही है; क्योंकि यह अस्थिमज्जामेदमांसनिर्मित प्राकृत शिशु नहीं है। यह तो परम दिव्यबालक है— बालक भी कथनमात्रका ही; वास्तवमें तो स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनका ही अनन्त, शेष नामसे अभिहित रूप ही बालक बनकर आया है।

जिस समय रोहिणीतनयका जातकर्म-संस्कार होने लगा, उस समय व्रजेन्द्रगेहिनी मनचाहा उत्सव भी नहीं मना सकीं; क्योंकि श्रीवसुदेवने व्रजेन्द्रको अत्यधिक सावधान कर दिया था कि बालकके जन्मकी बात सर्वथा गुप्त रखी जाय, अन्यथा राक्षस कंसके द्वारा बालक एवं उसकी जननीके अनिष्टकी पर्याप्त आशङ्का थी। इसीलिये श्रीरोहिणीतनयके दर्शनका अवसर सबको नहीं मिला था; किंतु अधिकांश व्रजपुरवासी जानते अवश्य थे कि रोहिणीजी पुत्रवती हो चुकी हैं। इसके पश्चात् नन्दनन्दनका जन्म हुआ। तबसे तो व्रजवासी मानो यह भूल-से गये थे कि रोहिणीतनयको भी किसी दिन जाकर देख आना है। उनके नेत्र नन्दनन्दनकी छबिसे ऐसे भर गये थे कि अब प्रायः अपने पुत्रके स्थानपर भी रह-रहकर उन्हें नन्दनन्दनकी स्फूर्ति होने लगती। किसी गोपविशेषकी बात नहीं, न्यूनाधिक सबकी ऐसी दशा होती जा रही थी। यहाँतक कि समस्त व्रजपुरमें दर्शन एवं श्रवणके एकमात्र विषय नन्दनन्दन ही हो गये थे। यह भी एक कारण था कि व्रजमें रहकर भी रोहिणीनन्दन गोप-साधारणके समक्ष अबतक नहीं आ सके।

अभीतक अग्रज (रोहिणीतनय) एवं अनुज (यशोदानन्दन)-का भी परस्पर मिलन नहीं हो सका था। व्रजेन्द्र अतिशय शुभ मुहूर्तकी प्रतीक्षा कर रहे थे तथा आज-कल करते-करते ही इतने दिन बीत गये। पर अब कार्यभारसे श्रीरोहिणी एवं यशोदा रानीको दबी देखकर— दोनोंको अत्यन्त व्यस्त पाकर व्रजेश्वरने विचार किया—

बालकयुगलमिदमपृथगालयालम्बनतामेव नितरामर्हति यतस्तदौचित्यजनन्योः स्वयमेव तल्लालनाय

लालसाधन्ययोस्तत्र च परस्परतदासक्तयोर्नाना-गृहगृहकार्यपर्यापणव्यसनयोर्युगपत्तद्युगलस्य पृथगवकलनं दुर्बलम्। (श्रीगोपालचम्पूः)

'इन दोनों बालकोंको अब अलग-अलग न रखकर एक घरमें ही सर्वथा साथ रखना चाहिये; क्योंकि इनकी माताएँ स्वयं ही दोनों पुत्रोंका लालन-पालन करना चाहती हैं। सचमुच ऐसी लालसा रखनेवाली ये माताएँ धन्य हैं। इन दोनोंकी परस्पर एक-दूसरेके पुत्रमें आसक्ति हो गयी है; रोहिणीजी यशोदानन्दनको एवं व्रजरानी रोहिणी-तनयको अतिशय प्यार करती हैं। पर साथ ही दोनोंमें ही यह व्यसन है कि आवश्यक गृहकार्यका सम्पादन भी वे स्वयं करना चाहती हैं। ऐसी अवस्थामें उन दोनोंके लिये दोनों बालकोंकी एक समयमें अलग-अलग देखभाल करना समुचित रूपसे सम्भव हो ही नहीं सकता।'

व्रजेन्द्रने अपना यह विचार ब्राह्मणोंपर प्रकट किया। फिर देर क्या थी। शुभ मुहूर्त निश्चित हो गया। बाजे बजने लगे। व्रजसुन्दरियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं। ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करने लगे। तुमुल जय-जय-ध्वनिके साथ रोहिणीनन्दन मणिपर्यङ्कपर विराजित यशोदानन्दनके पास पधारे। दोनों माताओंने दोनों भाइयोंका मिलन करवाया। उस अपूर्व सम्मेलनका दृश्य देखकर उस समय व्रजवासियोंके तो पलक पड़ने बंद हो गये। निर्निमेष नयनोंसे उन सबने देखा—

मिथो लग्ना दृष्टिः समजनि चिरं मूर्तिरचला
द्रवच्चित्तं नेत्रोदकमिषतयागादभिमुखम्।
इति भ्रात्रोर्बाल्येऽप्यसितसितयोः सा प्रसितता
नसे घ्यत्यालोके कुतुकमिह किं वा न तनुते॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

दोनों भ्राताओंकी आँखें मिलीं। दूसरे ही क्षण दोनोंके कलेवर प्रेमावेशसे निस्पन्द हो गये। बहुत देरतक उनकी वह कमनीय मूर्ति अचल, शान्त बनी रही। फिर दोनोंके नेत्रकोण अश्रुपूरित हो गये। वास्तवमें तो दोनोंका प्रेमविगलित चित्त ही अश्रुमिषसे सामने आया है। ओह! आश्चर्य! महान् आश्चर्य! इन श्यामल-गौर दोनों भाइयोंके शैशवका यह प्रथम दर्शन है! इस समयके, अत्यन्त अल्प बाल्यजीवनके प्रथम मिलनमें ऐसी प्रेमासक्ति, ऐसा अद्भुत प्रेमावेश है। ओह! सचमुच इनका प्रेमनिबन्धन कितना महान् आश्चर्यकारी है! यहाँका तो सब कुछ अत्यन्त आश्चर्यमय है!

यह तो भ्रातृमिलन हुआ। अब सखा-सुहृद्-मिलन भी होना ही चाहिये। इसीलिये अचिन्त्यलीला-महाशक्तिकी प्रेरणासे व्रजपुरवासियोंके मनमें एक परम सुन्दर भावका उन्मेष हुआ। सभी पुरवासियोंके मनमें इच्छा हुई—यशोदानन्दनके समवयस्क हमारी जो संतानें हैं, उनका भी ठीक ऐसे ही विधिवत् मिलन हो। विचार व्रजेन्द्रके सामने रखा गया। व्रजेन्द्र क्यों अस्वीकार करते? बस, उस दिनसे नन्द-भवनमें प्रतिदिन अगणित सखा-सम्मेलन-समारोह होने लगे। शत-सहस्र गोपाङ्गनाएँ शुभ मुहूर्तमें मङ्गलवाद्य, मङ्गलगीतके सहित अपने शिशुओंको लातीं तथा स्वस्तिवाचन कराकर यशोदानन्दनसे मिला देतीं। इन सबका मिलन भी सर्वथा ऐसा होता जैसे ये शिशु एवं यशोदानन्दन चिर-परिचित हों।

× × ×

व्रजवासी यशोदानन्दनको साँवरा, श्याम, नीलमणि, नन्दनन्दन आदि नामोंसे पुकारने लगे हैं; किंतु अभीतक शास्त्रीय विधिसे नामकरण-संस्कार नहीं हुआ है। अग्रजका भी यह संस्कार नहीं हो सका है। रोहिणीतनयका नामकरण-संस्कार करानेके सम्बन्धमें व्रजेन्द्रने अपने भाई श्रीवसुदेवको सूचना भी दी थी; किंतु वहाँसे कोई तिथि निश्चित होकर नहीं आयी। केवल यह उत्तर आया कि यथासमय व्यवस्था कर दी जायगी। इसके बाद देखते-ही-देखते रोहिणीनन्दनकी आयुका शततम वासर (सौवाँ दिन) व्यतीत हो

गया; पर कुछ भी आदेश या कोई ब्राह्मणदेव श्रीवसुदेवकी ओरसे व्रजेन्द्रके पास नहीं आये। व्रजेन्द्रने सोचा—परिस्थितिवश ही भाई वसुदेवने इसे अभी स्थगित रखना चाहा है; अस्तु। किंतु यशोदानन्दनका नामकरण-संस्कार तो ठीक उसी दिन हुआ, जिस दिन होना चाहिये।

व्रजेन्द्र नहीं जानते, व्रजरानी नहीं जानतीं, व्रजवासियोंको भी पता नहीं, कोई आयोजन भी नहीं हुआ है; पर नन्दनन्दनका संस्कार आज ही होनेवाला है। आज उनकी आयु सौ दिनकी हो चुकी है। अबतक उनकी अतिशय मधुर शैशव-चेष्टाओंसे व्रजमें नित्य आनन्द-मन्दाकिनी प्रवाहित होती रही है, व्रजजन उसमें अवगाहन करके कृतार्थ होते रहे हैं। वे स्वयं भी अपने आनन्द-वितरणका आस्वादन लेते हुए उत्तरोत्तर उल्लसित हो रहे हैं। अपने भाईके इस परमानन्द-वितरणमें हाथ बँटानेके लिये ही मानो *रोहिणीतनय* भी साथ हो गये हैं। दोनोंकी मुग्धबालकोचित भङ्गिमाओंको देखनेके लिये व्रजसुन्दरियोंकी भीड़ लगी रहती है। अब ये दोनों अपनी माताओंको तो अच्छी तरह पहचान गये हैं; यत्किञ्चित् पिता व्रजेन्द्रसे भी परिचय हो गया है; बाहरसे आये हुए आगन्तुकके प्रति यह घरका है कि नहीं, ऐसे ज्ञानका भी उनमें उन्मेष हो चुका है। इस तरह जैसे-जैसे शैशवकी गति बढ़ रही है, वैसे-वैसे ही तदनुरूप भावोंका भी प्रकाश होता जा रहा है। साथ ही दोनों भाइयोंकी शोभा भी निखरती जा रही है। इस शोभाकी इयत्ता भी नहीं है। यह तो एक अनन्त असीम पारावाररहित सुधासिन्धुके समान है, जिसमें उत्ताल तरङ्गें उठ रही हैं। तरङ्गें नाचती हुई आती हैं और यशोदानन्दन एवं रोहिणीनन्दनको अपनी अञ्चलमें छिपा लेती हैं। फिर वहाँसे उन्मादिनीकी तरह हँस-हँसकर सभी दिशाओंमें फैल जाती हैं तथा सारे व्रजपुरको, समस्त विश्वको प्लावित कर देती हैं—

सम्यङ्मातुः परिचितिरभूद् यत्र किञ्चित् पितुश्च
प्राप्तः सोऽयं स्वसदनजनः किं नवेत्थं प्रतिश्च।
तस्मिन् बाल्ये वलयति तयोः कापि शोभासुधाब्धि-
प्रख्या गोष्ठं भुवनमपि सा वीचिभिः सिञ्चति स्म॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

इन्हीं तरङ्गोंसे सिक्त हृदयमें अपने पुत्रके स्पष्ट प्रतिबिम्बित चन्द्रमुखको निहारते हुए व्रजेन्द्र इस समय गोष्ठमें अवस्थित हैं। आज एक पहरसे अधिक रात अवशिष्ट थी, तभी वे गोष्ठमें चले आये थे। चलते समय यह स्मृति अवश्य आयी थी कि आज मेरे पुत्रके जन्मका शततम वासर है। शास्त्रीय नियमके अनुसार आज नामकरण-संस्कार सम्भव है, किंतु अबतक रोहिणीनन्दनका ही नामकरण-संस्कार नहीं हुआ है; इसलिये व्रजेश्वरने सोचा—किसी अन्य पुण्यतर अवसरपर दोनों बालकोंके नामकरण एक साथ ही हो जायँगे। यह सोचकर वे गोष्ठ चले आये हैं। यहाँ प्रातःकाल होते ही विशाल गोराशि वनकी ओर चली गयी। उनके साथ गोरक्षक गोप भी चले गये। गोष्ठमें रहे केवल अगणित गोवत्स एवं गोष्ठ-परिष्कार करनेवाले, गो-आभूषण सँभालनेवाले सेवक। व्रजेन्द्र इनका निरीक्षण करते हुए घूम रहे थे। साथमें केवल एक सेवक था। निरीक्षण समाप्त होते ही वे वहीं, स्नानादिसे निवृत्त होकर, गोष्ठके एक अतिशय निभृत एकान्त भूभागमें शालग्रामशिलारूपमें विराजित अपने इष्टदेव श्रीमल्लक्ष्मीनारायणकी अर्चनामें संलग्न हो गये। अब एक पहर दिन चढ़ चुका है। व्रजेन्द्र पूजा समाप्तकर गोष्ठ-प्राङ्गणकी ओर देखने लगते हैं। प्राङ्गणमें कुछ गोवत्स हैं, जो कान उठाये द्वारकी ओर देख रहे हैं। व्रजेन्द्र गो-शावकोंकी इस चेष्टासे समझ जाते हैं कि द्वारके पास किसी नवीन आगन्तुकका आगमन हुआ है। उन्होंने भी दृष्टि घुमाकर उस ओर देखा। दीख पड़ा—यदुकुलाचार्य ज्योतिषाचार्यवर्य महामहिम तपोधन गर्गजी पधारे हैं।

व्रजेश्वरके आनन्दकी सीमा नहीं। अमृत पीकर आनन्दोन्मत्त हुए प्राणीकी भाँति व्रजेश्वर आसनसे उठ खड़े। भक्तिके प्रबल आवेशसे शरीर चञ्चल हो उठा। अञ्जलि बाँधकर, अतिशय विनम्र होकर आगे बढ़े, तपोधनके चरणोंमें दण्डवत् गिर पड़े। व्रजेशके मनमें तनिक भी संदेह नहीं, वे सर्वथा असंदिग्ध चित्तसे ऐसा अनुभव कर रहे हैं—साक्षात् इष्टदेव श्रीमन्नारायण ही तपोधन गर्गाचार्यके रूपमें पधारे हैं। इस भावनासे परिभावित हुए, भावकी तरङ्गोंमें डूबते-उतराते, नाना मनोरथोंकी मधुमयी कल्पना करते हुए महाराज नन्द ऋषिकी पूजा करने लग जाते हैं।

यह नियम है— अन्तर्हृदयका तरलभाव जब बाह्य क्रियाके रूपमें मूर्त होने लगता है, तब भावका प्रवाह शिथिल पड़ जाता है। उस समय भाव रूपान्तरित भी होता है। यही हुआ। पूजा समाप्त होते ही भगवद्भाव शिथिल हुआ तथा गर्गाचार्यका महापुरुषत्व व्रजेशके सामने आ गया। वे कहने लगते हैं—देव! आप-जैसे पूर्ण-पुरुषकी भला मैं क्या सेवा करूँ? अवश्य ही यह मेरा परम सौभाग्य है, जो आप पधारे हैं; क्योंकि—

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम्।
निःश्रेयसाय भगवन् कल्पते नान्यथा क्वचित्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८। ४)

गृह, पुत्र, कलत्र, बन्धु, बान्धव, धन-धान्यमें अत्यन्त आसक्त तथा उनके संरक्षण-संवर्द्धनमें अतिशय व्याकुलचित्त मनुष्योंका परममङ्गल करनेके लिये ही आप-जैसे महापुरुषोंका गमनागमन होता है। अन्यथा वे तो कहीं भी जाते ही नहीं।

यह कहते-कहते ही हठात् श्रीव्रजेशके अन्तर्हृदयमें नित्य विराजित अपने पुत्रका मुख स्फुरित होने लगता है। इसीके साथ अन्तर्मनके दूसरे छिद्रसे सजातीय विचारधारा भी फूट पड़ती है—ओह! आज ही तो मेरे पुत्रका शततम वासर है, रोहिणीनन्दनका संस्कार भी आज ही हो तो कितना सुन्दर है। ये यदुकुलाचार्य हैं, ज्योतिषशास्त्रके प्रणेता हैं, ब्रह्मज्ञशिरोमणि हैं, पुत्रोंके संस्कारका इससे अधिक सुन्दर अवसर और क्या होगा? अग्रजका संस्कार तो इन्हें करना ही चाहिये, कर ही देंगे, उस कुलसे तो इनका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। मेरे पुत्रका भी प्रार्थना करनेसे क्यों नहीं करेंगे? ये ब्राह्मण हैं, जन्मसे ही मनुष्यमात्रके गुरु हैं; इनको आपत्ति ही क्या होगी? ओह! इनके द्वारा संस्कृत होकर मेरे दोनों पुत्र कृतार्थ हो जायँगे। अवश्य ही नारायणने ही कृपा करके ठीक अवसरपर इन्हें भेजा है।

मनोरथके प्रवाहमें बहते हुए ही व्रजराजने कार्यक्रम भी निर्धारित कर लिया। उसीका उपक्रम करते हुए वे ऋषिके चरणोंमें निवेदन करते हैं—

बालो यो मम जातस्तस्मादधिकश्च वासुदेवो यः।
निजदृक्सुधया तं तं शीकितुमार्हां भवान् करुणः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

देव! मुझे जो एक पुत्र हुआ है तथा उससे बड़ा जो मेरे भाई वसुदेवका एक पुत्र है, उन दोनोंको भी अपनी दृष्टिसुधासे सिक्त कर दें। आप करुणामय हैं, करुणा करें।

नन्दरायजीकी इस स्नेहपरिपूरित प्रार्थनासे ऋषि तो गद्गद हो गये। आन्तरिक प्रसन्नताने इसका अभिनन्दन करते हुए तपोधनने अनुमति दे दी। पासमें ही परिचारक खड़ा है। व्रजेश्वर उसके कानमें सारी बातें समझाते हैं। सुनकर वह तो प्रासादकी ओर चल पड़ता है तथा मुनि एवं व्रजेन्द्र वहीं श्रीवसुदेवकी विपत्तिके सम्बन्धमें चर्चा करते हुए दोनों पुत्रोंकी प्रतीक्षा करते हैं।

एक घड़ी भी बीतने नहीं पायी कि आगे-आगे पुत्रोंको गोदमें लिये व्रजरानी एवं श्रीरोहिणी तथा उनके पीछे हाथोंमें गन्ध-पुष्प-धूप-दीप, जलपात्र आदि लिये परिचारक आ पहुँचता है। आचार्य गर्गने दूरसे ही रोहिणीनन्दन एवं यशोदानन्दनको देख लिया। देखते ही, मानो किसी विद्युल्लहरीने मुनिको

स्पर्श कर लिया हो, इस तरह चञ्चल होकर वे आसनसे उठ पड़े। बस, खड़े ही हो सके। इसके बाद तो शरीर जडवत् हो गया। नेत्र स्थिर हो गये। पर अन्तरमें पूर्ण चेतना है। आचार्य स्पष्ट सब कुछ अनुभव कर रहे हैं, स्पष्ट देख रहे हैं—दो माताएँ हैं, उनकी गोदमें उनके अनन्त स्नेहसे सिक्त श्याम एवं गौर दो बालक हैं। देखते-ही-देखते आचार्यको अनुभव हुआ, बरबस मेरे नेत्र अश्रुपूरित हो गये हैं। ओह! अश्रुबिन्दु बाहर ढलकने चले! गर्गने अपनी समस्त इच्छाशक्ति बटोरकर प्रयास किया—किसी तरह स्थिर नेत्र एक बार चञ्चल हो जायँ, एक बार ऊपर-नीचे टँगी हुई पलकें परस्पर मिल जायँ, अश्रुबिन्दु रुद्ध हो जायँ, बाहर न निकलें। किंतु न तो नेत्र हिले, न पलकें पड़ीं। अश्रुवारिधारा बाहरकी ओर बह चली। तपोधन उन्हें रोक न सके—

मातृयुग्मललिताङ्कलालितौ वीक्ष्य कृष्णधवलौ स बालकौ।
निर्निमेषदृशया दृशोर्जलं रोद्धुमैष्ट नितरां न तापसः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

ब्रह्मवित्-शिरोमणि गर्गके नित्य प्रकाशित अन्तरात्मामें उस समय एक अभिनव प्रकाशका उदय हुआ। उस प्रकाशसे आलोकित आचार्यका मन नन्दनन्दनको देखता हुआ उद्भावना करने लगा—

हन्तायं किमनादिमोहतमसः सद्रत्नदीपाङ्कुरः
किं न्वीशप्रतिपादकोपनिषदां प्रामाण्यमात्तं वपुः।
किं नः सौभगकल्पभूरुहवनस्याद्यः प्रसूनोदयः
सान्द्रानन्दसुधाम्बुधेः किमथवा सा कापि जन्मस्थली॥
यं ब्रह्मेति वदन्ति केचन जगत्कर्तेति केचित् परे
त्वात्मेति प्रतिपादयन्ति भगवानित्येव केऽप्युत्तमाः।
नो देशान्न च कालतो बत परिच्छेदोऽस्ति यस्यौजसो
देवः सोऽयमवाप नन्ददयितोत्सङ्गे परिच्छिन्नताम्॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

"ओह! यह क्या देख रहा हूँ? क्या यह अनादि मोहान्धकारको सर्वथा नष्ट कर देनेवाला विशुद्ध ब्रह्मरूप रत्नप्रदीपका अङ्कुर है? अथवा ईश्वरप्रतिपादक समस्त उपनिषदोंका प्रामाण्य ही शरीर ग्रहणकर मूर्त हो गया है? या यह हमारे सौभाग्यरूप कल्पतरुकाननका मूलभूत पुष्प प्रस्फुटित हुआ है? अथवा वह शास्त्रप्रसिद्ध संतोद्घोषित निबिड़ आनन्दसुधासागरका उद्गमस्थल ही मूर्त हो गया है? अहा! यह तो वह है! जान गया! जिसे कुछ लोग 'ब्रह्म' कहते हैं, कुछ मनीषी जिसका 'जगत्कर्ता' कहकर परिचय देते हैं, कुछ प्राणी जिसे 'परमात्मा' बतलाते हैं, कुछ श्रेष्ठ पुरुष जिसे 'भगवान्' कहकर प्रतिपादन करते हैं, जिसका प्रभाव देशकालसे परिच्छिन्न नहीं है, देश-कालकी सीमामें बद्ध नहीं है, वही देव नन्दमहिषीकी गोदमें परिच्छिन्न, सीमाबद्ध बना हुआ दीख रहा है। ओह! यह कितना आश्चर्य है!"

आचार्य गर्गके हृदयमें कभी तो स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनका महान् ऐश्वर्य उदय होता है और कभी उनके रूप-माधुर्यकी शतसहस्र सुधाधाराएँ प्रवाहित होने लगती हैं। ऐश्वर्योन्मेषके समय आचार्य नन्दनन्दनके चरणोंमें लुट पड़ना चाहते हैं और जिस क्षण माधुर्यका विकास होता है, उस समय यशोदानन्दनके महामरकतद्युति कलेवरको हृदयसे लगानेका मनोरथ करने लगते हैं, किंतु व्रजेन्द्रनन्दनकी लीलाशक्ति दोनोंमेंसे एक भी करने नहीं देती। उन्हें लीलाक्रमकी रक्षा जो करनी है। आचार्य सोचने लगते हैं—

पादौ दधामि यदि मां वदिता जनोऽय-
मुन्मत्तमेव बत वक्षसि चेत् करोमि।
तच्चातिचापलमहो न करोमि वा चे-
दौत्कण्ठ्यमेव हि लविष्यति धैर्यबन्धम्॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

"यदि मैं नन्दनन्दनके चरण-युगलको धारण करता हूँ तो ये लोग मुझे उन्मत्त बतायेंगे। यदि इन्हें हृदयसे लगा लूँ तो यह मेरी अतिशय चञ्चलता सिद्ध होगी। यदि वह भी न करूँ, यह भी न करूँ, कुछ

भी नहीं करूँ तो भी मेरी यह उत्कण्ठा मेरे धैर्य-बन्धनको काट डालेगी।''

इस धैर्यबन्धन-छेदनका भय एक क्षणके लिये आचार्यके मनमें आया तो अवश्य, पर तुरंत ही विलीन हो गया। उनके प्रफुल्ल अन्तःकरणने निर्णय दे दिया—धैर्य नष्ट हो, सब कुछ नष्ट हो, मैं तो निहाल हो चुका—

जन्माद्य साधु सफलं सफले च नेत्रे
विद्या तपः कुलमहो सफलं समस्तम्।
आचार्यता भगवती हि यदोः कुलस्य
मामद्य हन्त नितरामकरोत् कृतार्थम्॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

''आज मेरा जन्मधारण सफल हो गया। मेरे नेत्र सफल हो गये। मेरी विद्या, मेरा तप, मेरा कुल—सब सफल हो गये। मैं कृतार्थ हो गया—अपने पुरुषार्थसे नहीं, मुझे तो कृतार्थ किया है यदुकुलकी आचार्यतारूप भगवतीने। मैंने यदुकुलकी आचार्यताका आश्रय लिया था, इस आचार्यताने ही मुझपर अतिशय अनुकम्पा करके मुझे सर्वथा कृतार्थ बना डाला।''

व्रजेन्द्र तपोधनकी ओर आश्चर्यभरी दृष्टिसे देख रहे हैं; किंतु अब मुनि प्रकृतिस्थ होने लगते हैं। उन्हें प्रकृतिस्थ होना ही था। जिस लिये लीला-शक्ति उन्हें व्रजपुरमें ले आयी हैं, वही इस समय उन्हें करना है। अस्तु, आचार्य व्रजेन्द्रकी ओर देखने लग जाते हैं। इसी समय व्रजेन्द्रगेहिनी एवं श्रीरोहिणीजी मुनिवरको प्रणाम करती हैं, फिर दोनों पुत्रोंको तपोधनके चरणोंमें रख देती हैं। मुनिवर आशीर्वाद देते हैं। इसके पश्चात् उनकी आज्ञा पाकर उनसे कुछ दूरपर दोनों माताएँ पुत्रोंको गोदमें लेकर बैठ जाती हैं।

अब अतिशय विनम्र शब्दोंमें विनयपूर्वक व्रजेन्द्र आचार्यसे दोनों पुत्रोंके नामकरण-संस्कार कर देनेकी प्रार्थना करते हैं, किंतु मुनिवर स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि यह संस्कार अपने कुलगुरुसे करा लेना चाहिये। हाथ जोड़कर व्रजेन्द्रने आचार्यके सामने 'जन्मना ब्राह्मणो गुरुः' (जन्मसे ही ब्राह्मण सबके गुरु हैं) की युक्ति रख दी। इसपर भी तपोधनने स्वीकृति नहीं दी। हाँ, इस बार स्वयं संस्कार न करनेमें हेतु उन्होंने अत्यन्त प्रबल एवं युक्तिसंगत बतलाया। वे बोले—''व्रजेन्द्र! सुनो, सारा विश्व जानता है कि मैं यदुकुलका आचार्य हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका नामकरण-संस्कार करता हूँ तो कंसकी यह धारणा हो सकती है कि यह देवकीका अष्टम-गर्भजात बालक है। पापमति कंससे तुम्हारे एवं वसुदेवके बीचका सम्बन्ध अज्ञात नहीं, वह तुम दोनोंको ही जानता है। साथ ही उस दिन आकाशमें उड़कर देवीरूपमें परिणता वसुदेव-पुत्रीके वचनोंको स्मरण करता हुआ वह निरन्तर ऐसी धारणा कर रहा है कि देवकीके अष्टम गर्भकी संतान कदापि कन्या हो ही नहीं सकती। सम्प्रति मेरे द्वारा तुम्हारे पुत्रका संस्कार सुनकर यदि कहीं उसकी यह मान्यता हो जाय कि यह नन्दपुत्र वास्तवमें वसुदेवका ही अष्टम पुत्र है तथा वह तुम्हारे पुत्रका प्राणनाश करने स्वयं व्रजपुरमें आ धमके, प्राणहरण कर ले तो तुम्हीं बताओ, कितना बड़ा अमङ्गल, कितना भीषण अनर्थ हो जायगा?''

व्रजेन्द्र आचार्यके इस कथनका प्रतिवाद न कर सके। क्षणभरके लिये उनका मुख म्लान-सा हो गया। मनमें प्रबल उत्कण्ठा थी कि दोनों पुत्रोंको ऐसे श्रेष्ठतम आचार्यके द्वारा सुसंस्कृत देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे, किंतु मुनिवरकी इस युक्तिका उनके पास कोई उत्तर नहीं था। निराश व्रजेन्द्रने भोली आँखोंसे उनकी ही ओर देखते हुए पुत्रकी ओर दृष्टि डाली। मानो उन नेत्रोंमें ही मुनिवरके शङ्का-समाधानका कोई संकेत हो, इस तरह दृष्टि मिलते ही व्रजेन्द्रके मनमें समयोचित व्यवस्थाका स्फुरण हो गया। व्रजेश्वरने सोचा—इन महामहिम मुनिराजके द्वारा यदि स्वस्तिवाचन ही हो जाय तो फिर तो सभी मङ्गल होगा ही।

इस विचारसे पुनः हाथ जोड़कर वे आचार्यसे प्रार्थना करने लगे—गुरुदेव! आपका सङ्ग ही अनन्त मङ्गलमय है। इसलिये—

अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे।
कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८। १०)

"इस निर्जन गोष्ठमें मेरे अन्तरङ्ग गोपबन्धुओंसे भी सर्वथा अलक्षित केवल स्वस्तिवाचनपूर्वक मेरे इन दोनों पुत्रोंका द्विजाति-संस्कार—रोहिणीनन्दनका क्षत्रियोचित, मेरे पुत्रका वैश्योचित नामकरण-संस्कार कर दें।"

यह कहते हुए व्रजेन्द्रने तपोधनके चरण पकड़ लिये। इस बार व्रजेन्द्रकी विजय हुई। वास्तवमें तो आचार्य गर्ग आये ही थे नामकरण-संस्कार करने तथा प्रबल उत्कण्ठासे ही अवसरकी प्रतीक्षा भी कर रहे थे। यह चर्चा तो उन्होंने इसलिये की है कि यह संस्कार सर्वथा गुप्त रहे, किसीपर भी प्रकट न हो। जो हो, आचार्य प्रसन्नचित्तसे प्रस्ताव स्वीकार कर लेते हैं।

अनादिकालसे अपने क्षुद्रसंकल्पसे जो अपने भीतर ही नामरूपात्मक अनन्त विश्वब्रह्माण्डके सृजन-पालन-संहारकी क्रीड़ा कर रहे हैं, एकमें ही जो अनन्त नामोंकी सृष्टि करके खेलते हैं तथा खेलते हुए ही उन नामोंको पुनः विलुप्त कर देते हैं, उनका नामकरण-संस्कार है तो परम दर्शनीय; पर उसे उस समय देख सके केवल व्रजेन्द्र, व्रजरानी, रोहिणी, गर्गाचार्य, वह बड़भागी नन्दपरिचारक एवं अन्तरिक्षमें अवस्थित देवगण! स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनकी यही इच्छा है। अस्तु, आचार्य स्वस्तिवाचन समाप्तकर प्रथम रोहिणीनन्दनका नामोल्लेख करते हुए कहते हैं—व्रजेश्वर! यह रोहिणीनन्दन अपनी अपरिसीम सद्गुणराशिसे समस्त सुहृद्वर्गका प्रीति-सम्पादन करेगा। इसलिये इसका एक नाम 'राम' प्रसिद्ध होगा। और सुनो, यह अत्यन्त बलशाली होगा, इसलिये लोग इसे 'बल' भी कहेंगे। इसका एक नाम 'संकर्षण' होगा—यह नाम इसलिये कि यदुकुल एवं व्रजकुल दोनोंके प्रति इसके मनमें समान बुद्धि होगी, यदुवंशी वसुदेवका पुत्र होकर भी यह तुम्हें भी अपना पिता समझेगा, दोनों कुलोंका आकर्षण करते हुए इसके मनमें एक समान सम्बन्धकी भावना जाग्रत् रहेगी। ये तो हुए रोहिणीनन्दनके नाम। अब यशोदानन्दनके नाम सुनो; देखो, यह तुम्हारा बालक सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि—इन चारों युगोंमें ही प्रकट हुआ करता है। इससे पूर्व यह शुक्ल, रक्त, पीत रूपोंमें अवतीर्ण हो चुका है। किंतु इस बार कृष्ण (काले) वर्णमें आया है। इसलिये इसका एक नाम 'कृष्ण' होगा। तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा, पर है सर्वथा सत्य कि यह बालक तुम्हारे यहाँ जन्म लेनेके पूर्व कभी वसुदेवका पुत्र भी हो चुका है। इसलिये जो इस रहस्यको जानते हैं, वे इसे 'वासुदेव' कहकर अभिहित करेंगे। व्रजेन्द्र! वास्तवमें तो तुम्हारे इस पुत्रके गुणानुरूप, कर्मानुरूप असंख्य नाम, असंख्य रूप हैं। उन्हें मैं जानता हूँ, अन्य जन नहीं जानते, जान सकते ही नहीं। उन अनन्त नामोंमेंसे मैंने तुम्हारे पुत्रके ये दो नाम बताये।"

आचार्य यह कहते-कहते पुनः गद्गद हो गये। उनकी आँखें निमीलित हो गयीं। वे कुछ क्षणके लिये समाधिस्थ-से हो गये। इधर व्रजेश, व्रजरानी, रोहिणीजीका प्रत्येक रोम आनन्दातिरेकसे पुलकित हो रहा है, नेत्र छल-छल कर रहे हैं। कुछ देर बाद आचार्यने नेत्र खोलकर व्रजेन्द्रकी ओर देखा। देखते ही व्रजेन्द्रकी एक अन्य इच्छाका प्रतिचित्र सर्वज्ञ तपोधनके अन्तःकरणमें अङ्कित हो गया। वे शान्त-गम्भीर पर अतिशय प्रफुल्ल मुद्रामें बोल उठे—पुत्रका जातक-फल सुनना चाहते हो, व्रजेन्द्र! अच्छा, सुनो—

संबत सरस विभावन, भादौं आठैं तिथि, बुधवार।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्ध निसि, हर्षन जोग उदार॥
बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं।
चौथें सिंघ रासिके दिनकर, जीति सकल महि लैहैं॥

पचएँ बुध कन्या की जो है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं।
छठएँ सुक्र तुलाके सनिजुत, सत्रु रहन नहिं पैहैं॥
ऊँच नीच जुबती बहु करिहैं, सतएँ राहु परे हैं।
भाग्य-भवन में मकर-महीसुत बहु ऐश्वर्य बढ़ैहैं॥
लाभ-भवन में मीन-बृहस्पति, नवनिधि घर में ऐहैं।
कर्म-भवनके ईस सनीचर, स्याम बरन तन ह्वैहैं॥

इस बार 'श्याम' नामका उच्चारण होते ही आचार्यमें आवेश-सा हो जाता है। वे उच्च कण्ठसे कहने लगते हैं—"व्रजेश्वर! और भी अद्भुत फल सुनो—तुम्हारा यह पुत्र गोपोंको, समस्त गोकुलवासियोंको परमानन्दसिन्धुमें निमग्न कर देगा। यह कृष्ण तुम सब लोगोंका ऐहिक-आमुष्मिक (लोक-परलोक-सम्बन्धी) मङ्गल, परम मङ्गल सम्पादन करेगा। कृष्णका अवलम्बन करके तुम सभी अनायास ही समस्त विपत्तियोंको पार कर लोगे। व्रजेश्वर! इसके पूर्व जन्मोंसे सम्बद्ध एक बात तुम्हें सुनाता हूँ। उस समय सुरराज पदच्युत हो चुके थे। नन्दनकाननपर दैत्योंका साम्राज्य स्थापित हो चुका था। दैत्य-विदलित देवगण 'त्राहि-त्राहि' पुकार रहे थे। उस समय तुम्हारे इस पुत्रने ही देववृन्दकी रक्षा की थी। इससे रक्षित होकर, इसके बलसे ही बलान्वित होकर दैत्योंपर देवोंने पुनः विजय पायी थी। व्रजराज! इस पुत्रमें यह भी एक स्वभावसिद्ध गुण है कि जो मनुष्य इसे प्यार करते हैं, उसपर किसी प्रकारके भी शत्रुकी विजय नहीं हो सकती; जिस प्रकार भगच्चरणारविन्दाश्रित प्राणीका असुर पराभव नहीं कर सकते, ठीक उसी प्रकार इसमें प्रीति करनेवालेका शत्रु पराभव नहीं कर सकते। नन्दराय! अधिक क्या कहूँ, तुम्हारा यह पुत्र सद्गुण, सम्पदा, कीर्ति एवं प्रभावकी दृष्टिसे नारायण-तुल्य है। सावधान रहकर तुम इसका पालन करो।"

ऋषिवर गर्ग इतना कहकर चुप, शान्त हो जाते हैं। अञ्जलि बाँधकर, मन-ही-मन श्रीकृष्णके चारु चरणोंमें नत होकर मूक भाषामें ही वे कहने लगते हैं—"गोलोकविहारिन्! तुम्हारी जय हो! जय हो! व्रजेन्द्रके अनन्त-वात्सल्यपरिभावित मसृण चित्तमें तुम्हारे ऐश्वर्य-कीर्तनका सैकतकण न बिखेरते हुए, साथ ही पूर्ण सत्यकी रक्षा करते हुए मेरे द्वारा तुम्हारे नामकरण-संस्कारकी सेवा सम्पन्न हो सकी, यह सर्वथा तुम्हारी अनुकम्पासे ही हुआ है। अनन्त करुणार्णव! करुणाका एक बिन्दु देकर मेरे लिये इतना ही विधान कर दो—अनन्त कालतक जहाँ कहीं भी तुम यदुकुलमें अवतीर्ण होओ, वहाँ-वहाँ ही मैं यदुकुलाचार्य बनकर तुम्हारे नामकरण-संस्कारकी सेवा करता रहूँ।"

इस प्रकार नामकरण-संस्कार समाप्त हुआ। आचार्य अतिशय लोलुप दृष्टिसे बारम्बार राम-श्यामकी ओर निहारते हुए बिदा लेने लगे। व्रजेन्द्रने भी अपने अश्रुजलबिन्दुओंसे एक माला बनाकर, उसे आचार्यके चरणोंमें भेंट देकर विदाई दे दी। अपार धन-सम्पत्तिके दानको तो आचार्यने स्वीकार ही नहीं किया। यही अश्रु-भेंट लेकर वे चल पड़े। उनकी ओर देखते हुए व्रजेन्द्र इस समय अनुभव कर रहे हैं—मेरी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गयी हैं, मेरे समान सुखी और कोई है ही नहीं!

सुखसागरमें निमग्न होकर, सुखमय तरङ्गोंमें बहती हुई-सी श्रीरोहिणी एवं व्रजेन्द्रगोहिनी भी राम-कृष्णको गोदमें लिये गृहकी ओर चल पड़ती हैं। व्रजकी रानी यशोदा इस समय किस सुखका अनुभव कर रही हैं, इसे वे ही जानती हैं। वास्तवमें ही व्रजका सुख सर्वथा स्वसंवेद्य एवं अत्यन्त अनोखा सुख है—

जो सुख ब्रज में एक घरी।
सो सुख तीनि लोक में नाहीं, धनि यह घोष-पुरी॥
अष्टसिद्धि-नवनिधि कर जोरें, द्वारें रहति खरी।
सिव-सनकादि-सुकादि-अगोचर, ते अवतरे हरी॥
धन्य-धन्य बड़भागिनि जसुमति, निगमनि सही परी।
ऐसे सूरदास के प्रभु कौं, लीन्हौ अंक भरी॥

शिशु श्रीकृष्णका अन्नप्राशन-महोत्सव, कुबेरके द्वारा गोकुलमें स्वर्णवृष्टि

शिशिरका ब्राह्ममुहूर्त है। दो घड़ी पश्चात् माघशुक्ला चतुर्दशीका प्रभात होगा। इसीके साथ व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशनका उत्सव-समारोह भी आरम्भ होगा, मानो इसकी सूचना प्रातःसमीरको भी मिल चुकी है। इसीलिये वह गवाक्षरन्ध्रोंके पथसे आया; आकर प्रथम पर्यङ्कशायिनी व्रजेन्द्रमहिषीके, फिर उनके वक्षःस्थलपर विराजित निद्रित व्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्रके पादारविन्द उसने स्पर्श किये। स्पर्शसे कृतार्थ होकर राशि-राशि कुन्दपुष्पोंसे संचित परिमल अपने दुकूलसे निकालकर शयनागारमें सर्वत्र बिखेर दिया। उत्सवके उपलक्षमें अपनी क्षुद्र भेंट चढ़ा दी तथा फिर अतिशय शीघ्रतासे आनन्दातिरेकवश चञ्चल होकर 'झुर-झुर' शब्द करता हुआ अन्य व्रजवासियोंको जगाने चला गया।

व्रजरानी तो जागी हुई ही हैं। वे सारी रात क्षणभरके लिये भी सो नहीं सकी हैं। फिर भी रात्रि कब कैसे समाप्त हो गयी, यह उन्होंने नहीं जाना। जानतीं कैसे? वे तो अनेक सुखमय मनोरथोंकी कल्पनामें विभोर थीं, नीलमणिका भावी अन्नप्राशन प्रत्यक्ष वर्तमान-सा बनकर नेत्रोंमें भरा था। वे उस दृश्यमें, अपने नीलमणिमें तन्मय हो रही थीं। किंतु प्रातःसमीरके स्पर्शसे जननीके प्रशान्त वात्सल्यसिन्धुमें एक कम्पन हुआ। उसमें एक लहर उठ आयी। जननीके कृष्णमय मन-प्राण इस लहरोंसे सिक्त हो गये एवं तत्क्षण उनमें स्फुरणा हुई— कहीं मेरे नीलमणिके अङ्ग अनावृत हों, शिशिरकी शीतल वायुसे उनमें ठंढ लग गयी तो? बस, व्रजरानी तुरंत उठ बैठीं एवं वस्त्र सँभालने लगीं। वास्तवमें ही यशोदानन्दनके श्रीअङ्गोंसे कहीं-कहीं वस्त्र हट गये थे। जननी उन्हें गोदमें लेकर वस्त्रोंसे ढँकने लगीं। इसी समय उनका ध्यान नीलमणिके वक्षःस्थलकी ओर गया, वक्षःस्थलपरका श्रीवत्सचिह्न मणिदीपके प्रकाशमें स्पष्ट चम-चम कर रहा था; किंतु जननीको पुनः भ्रम हो ही गया। इससे पूर्व भी जननी कई बार भ्रमित हो चुकी हैं। इस भ्रमका प्रारम्भ तो प्रथम स्तनदानके समय हुआ था। उस समय जातकर्मके पश्चात् जननी स्तन्यपान करा रही थीं। पुत्रके प्रत्येक अङ्गका सौन्दर्य निरखती हुई जननीने हृदयकी ओर देखा था। हृदयके दक्षिण भागमें रोमावलीका अनादिसिद्ध श्रीवत्सनामक चिह्न अङ्कित था ही। उसकी शोभा भी अद्भुत ही थी, मानो मृणालतन्तुओंका चूर्ण एकत्र हो गया हो! वैसा ही सुन्दर, वैसा ही सुस्निग्ध! किंतु श्रीवत्सको देखकर जननीने तो यह समझा था—मैं शिशुको स्तन्य पिला रही हूँ, मेरे स्तनक्षरित दुग्धकण ही पुत्रके कपोलपर होते हुए वक्षःस्थलपर आ ढलके हैं; उन दुग्धकणोंसे ही यह चिह्न निर्मित हो गया है। इतना ही नहीं, जननी सुकोमलतम सूक्ष्म वस्त्राञ्चलसे धीरे-धीरे उसे पोंछ देनेका प्रयत्न करने लगी थीं। किंतु चिह्न मिटता न था। जब वस्त्रसे उस चिह्नका मार्जन न कर सकीं, तब वे सोचने लगी थीं कि सम्भवतः यह किसी महापुरुषका लक्षण हो—

वक्षसि दक्षिणभागे मृणालतन्तुक्षोदसोदर-सुभगसुस्निग्धश्रीवत्साख्यरोमराजिलक्ष्म लक्षयित्वा स्तन्यकणरसनिपातविन्यासविशेषोऽयमिति पुनरपि मृदुतरचीनसिचयाञ्चलेनापसारयन्ती यदा तन्नापसरति तदा किमपीदं महापुरुषलक्षणमिति चिन्तयन्ती।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

इसी तरह आज पुनः पूर्वकी भाँति जननीको एक क्षणके लिये भ्रम हो जाता है कि निद्रित नीलमणिके अधरोंसे क्षरित दुग्धकण ही यहाँ आकर इस रूपमें परिणत हो गये हैं। अवश्य ही इस बार वे मार्जन करने नहीं जातीं; क्योंकि तुरंत ही अन्तर्वृत्ति सचेत कर देती है। जननी अपनी भूलपर मन्द-मन्द मुसकराती हुई वस्त्रोंसे शीत-निवारणकी उचित व्यवस्था करके पुत्रको हृदयसे लगा लेती हैं।

सूर्योदयमें अभी विलम्ब है, किंतु गोपसुन्दरियोंके दल-के-दल नन्द-प्राङ्गणमें एकत्र होने लगे। घड़ीभर दिन चढ़ते-चढ़ते तो नन्दभवन गोप-वनिताओंसे सर्वत्र परिपूर्ण हो गया। नन्दभवनमें पुरमहिलाओंके लिये समय-असमयकी रोक-थाम तो है नहीं तथा व्रजपुरमें नन्दनन्दनके अन्नप्राशनमुहूर्तकी सूचना फैल चुकी है। इसलिये आज यमुना-स्नान करके कितनी ही गोपसुन्दरियाँ तो घर भी नहीं गयीं, सीधे नन्दभवनमें ही चली आयीं। जिनके अतिशय अल्पवयस्क पुत्र हैं, उन्हें ही आनेमें कुछ विलम्ब हुआ; पर आयीं सब। छोटे शिशुओंको गोदमें लिये, किञ्चित् वयस्क पुत्रोंकी अँगुली पकड़े, मङ्गलगीत गाते आती हुई गोपसुन्दरियोंकी मधुर कण्ठध्वनिसे सुमधुर झन्-झन्, झिन्-झिन्, रुनं-झुन, रुन-झुन, कङ्कण-किङ्किणी-नूपुरध्वनिसे राजपथ तथा राजपथके दोनों ओर स्थित उत्तुङ्ग प्रासाद प्रतिशब्दित होने लगे। उन गोपाङ्गनाओंकी प्रत्येक भावभङ्गीसे एक अद्भुत वात्सल्य, अप्रतिम मातृभावका निर्झर झरता जा रहा है।

उपनन्दजीने आदेश दे रखा है कि आज मध्याह्नतक गोचारण स्थगित रहे। व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशनके पश्चात् समय रहनेपर गायें निकटवर्ती वनमें कुछ समय घुमा ली जायँ। अतः गोपमण्डली भी शीघ्रतासे गायोंको दुहकर, उनके सामने प्रचुर हरित-तृण डालकर तथा स्वयं स्नान आदि समाप्तकर, विविध वेषभूषासे अलंकृत होकर नन्दभवनकी ओर उमड़ पड़ती है। उनकी पत्नियाँ, माताएँ तो पहले ही चली गयी हैं। गायोंकी व्यवस्था करनेके लिये ये रुके थे। उनकी व्यवस्था तो इन्होंने कर भी दी। किंतु शीघ्र-से-शीघ्र नन्दभवन पहुँचनेकी, नेत्रोंसे नन्दनन्दनको जी भरकर निहारनेकी प्रबल उत्कण्ठावश दूधकी उचित व्यवस्था ये नहीं ही कर सके। दुहे हुए दूधसे पूर्ण भाण्डोंको घर पहुँचानेतकका भी धैर्य इनमें न रहा। कुछ ही भाण्ड घर आये, अधिकांश गोष्ठमें ही रह गये। और तो क्या, बहुत-सी गायें बिना दुहे ही रह गयीं। गोवत्सोंको यों ही उन्मुक्त कर दिया गया। चौकड़ी भरते हुए बछड़े अपनी माताओंसे जा मिले। इसी अवस्थामें उन्हें छोड़कर गोप द्रुतगतिसे नन्दालयकी ओर चल पड़े।

यथासमय व्रजरानी नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पुत्रको गोदमें लिये आँगनमें चली आती हैं। गोपाङ्गनाओंकी अपार भीड़ उन्हें चारों ओरसे घेर लेती है। निकटतम कुटुम्बियोंको नन्दरानीने दासी भेजकर निमन्त्रित किया है। वे सब आ गयी हैं। व्रजरानी एक बार भंडारकी ओर जाती हैं। वहाँ पुत्रको गोदमें लिये श्रीरोहिणीजी सारी व्यवस्था कर रही हैं—

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।
मनि-कंचन के थार भराए, भाँति भाँतिके बासन॥

श्रीरोहिणीजीका यह परिश्रम देखकर व्रजरानीकी आँखोंमें स्नेह-जल भर आता है। सजल नेत्रोंसे वे कुछ क्षण रोहिणीजीकी ओर देखकर फिर उन निमन्त्रित कुटुम्बी व्रजवधुओंकी ओर देखने लगती हैं। इतना संकेत पर्याप्त है। वे शतशः व्रजवधुएँ तुरंत ही पकवान बनानेमें जुट पड़ती हैं।

नंदघरनि ब्रजबधू बुलाई, जे सब अपनी भाँति।
कोउ ज्योंनार करति, कोउ घृत-पक, षटरस के बहु भाँति॥
बहुत प्रकार किए सब व्यंजन, अमित बरन मिष्टान्न।
अति उज्ज्वल कोमल सुठि सुंदर, देखि महरि मन मान॥

व्रजेन्द्रका उत्साह तो देखने योग्य ही है। उनकी योजना ऐसी है कि उनके पुत्रका अन्नप्राशन-उत्सव अतीत एवं भविष्यके इतिहासमें अद्वितीय बन जाय। नन्दप्रासादसे संलग्न, कालिन्दीतीरपर्यन्त विस्तीर्ण सुमनोहर नन्दोद्यानमें व्रजेन्द्रने एक नयी सृष्टि-सी रच दी है। उस सुरम्य उद्यानमें नौ छोटी-छोटी नदियोंका निर्माण हुआ है। जलकी नदियाँ नहीं, विभिन्न भोज्यरसोंकी। पहली नदी दधिकी है, उसमें दधिकी धवल धारा बह रही है, दोनों तट दधिसे भरपूर हैं। दूसरी गोदुग्धकी नदी है, निर्मल उज्ज्वल शीतल दुग्ध प्रवाहित हो रहा है। तीसरी नदी घृतकी है, पीतवर्णा यह घृत-नदी मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही है, दोनों किनारे घृतसिक्त हो गये हैं। चौथी गुड़की नदी है, पीताभ गुड़की यह पयस्विनी अत्यन्त स्थिर-सी है। मानो सचमुच ही किसी नदीकी पीताभ जलधारा हिमके संयोगसे जम

गयी हो, ऐसी इस गुडकुल्या (गुड़की नदी)-की शोभा है। पाँचवीं तैलनदी प्रवाहित हो रही है, मन्द-मन्थरगतिसे धीरे-धीरे यमुनाकी ओर इसकी गति है। छठी नदी अत्यन्त विस्तीर्ण है, यह मधुकुल्या है, इसमें मधुधारा बह रही है। सातवीं नवनीतनदी है, उज्ज्वल हिमपिण्डकी भाँति नवनीतखण्ड जम-से गये हैं। अत्यन्त शान्त-सी प्रतीत हो रही है। इसका प्रवाह परिलक्षित नहीं होता। इन सातके अतिरिक्त तक्रनदियाँ भी हैं। ये कई हैं तथा द्रुत गतिसे झर्-झर् करती हुई यमुनाकी ओर भागी जा रही हैं। कुछ शर्करोदक नदियाँ हैं, इनकी शर्करामिश्रित मिष्ट जलधारा अत्यन्त प्रखर गतिसे उद्यानकी परिक्रमा कर रही है।

इन नदियोंके मध्यवर्ती देशमें उज्ज्वल प्रस्तरखण्डोंसे पटी हुई भूमिपर व्रजेन्द्रने शालितण्डुलोंके एक शत एवं पृथक् तण्डुलों (चिउरों)-के एक शत पर्वत बनवाये हैं। वहीं सात लवण-पर्वतोंका भी निर्माण करवाया है। इसी तरह शर्कराके सात एवं लड्डूके सात पर्वत निर्मित हुए हैं। परिपक्व सुमधुर फलोंके सोलह पर्वत रचे गये हैं। यवचूर्ण (जौके आटे) तथा गोधूमचूर्ण (गेहूँके आटे)-के भी अनेक पर्वत बने हैं। मोदकोंका पर्वत निर्मित हुआ है। विशेष कौशलसे निर्मित, अत्यन्त सुस्वादु, एक प्रकारकी पूरियोंके अनेक पर्वत खड़े किये गये हैं। इन पूरियोंके पर्वतोंपर राशि-राशि सुसंस्कृत लड्डू रख दिये गये हैं। इनसे कुछ हटकर व्रजेन्द्रने सात कौड़ियोंके पर्वत बनवाये हैं। वहींपर सुवासित जलयुक्त, कर्पूरादिमिश्रित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुङ्कुम-समन्वित ताम्बूलोंका अत्यन्त विस्तृत, पर द्वारहीन एक मन्दिर निर्माण करवाया है। विभिन्न जातिकी रत्नराशि एवं सुवर्ण, सुरम्य मुक्ताफल तथा प्रवालपुञ्ज ढेर-के-ढेर यथास्थान रख दिये गये हैं। रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र एवं सुन्दर आभूषणोंके स्तूप लग गये हैं—

दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम्।
गुडकुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्यां च विस्तृताम्॥
नवनीतकुल्यां पूर्णां च तक्रकुल्यां यदृच्छया।
शर्करोदककुल्यां च परिपूर्णां च लीलया॥
तण्डुलानां च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान्।
पृथुकानां शैलशतं लवणानां च सप्त च॥
सप्त शैलाञ्छर्कराणां लड्डुकानां च सप्त च॥
परिपक्वफलानां च तत्र षोडश पर्वतान्।
यवगोधूमचूर्णानां पक्वलड्डुकयिष्टकान्॥
मोदकानां च शैलं च स्वस्तिकानां च पर्वतान्।
कपर्दकानाममत्युच्चैः शैलान् सप्त च नारद॥
कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानां च मन्दिरम्।
विस्तृतं द्वारहीनं च वासितोदकसंयुतम्॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम्।
नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च॥
मुक्ताफलानि रम्याणि प्रवालानि मुदान्वितः।
नानाविधानि चारूणि वासांसि भूषणानि च॥
पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात्।

(ब्रह्मवैवर्तपु० कृष्णखण्ड, अ० १३)

जिस आँगनमें श्रीकृष्णचन्द्र अन्नप्राशन करेंगे, उसे भी व्रजेन्द्रने स्वयं उपस्थित रहकर सजाया है। सुमार्जित, चन्दनवारिसे सर्वत्र सिक्त विशाल सुन्दर प्राङ्गणमें चारों ओरसे ऊँचे-ऊँचे सघन कदलीस्तम्भ खड़े कर दिये गये हैं। कदलीस्तम्भोंपर यथास्थान सूक्ष्म वस्त्रोंमें ग्रथित आम्र-नवपल्लव टँगे हैं। स्थान-स्थानपर फल-पल्लवसमन्वित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-पुष्पपरिशोभित अनेक मङ्गल कलश रखे हैं। कलशके समीप पुष्प-समूहोंके, चित्र-विचित्र वस्त्रोंके ढेर लगे हैं। ब्राह्मणोंके विराजनेके लिये यथास्थान आसन एवं उनकी पूजाके लिये मधुपर्कपूरित अनेक पात्र रखे हैं। शत-शत स्वर्णसिंहासन दानके लिये सजा-सजाकर रखे हुए हैं।

यह सारी व्यवस्था व्रजेन्द्रने केवल तीन पहरमें की है। असंख्य गोपसेवकोंको लेकर आधी रातके समय व्रजेश्वरने कार्य प्रारम्भ किया था। पहर दिन चढ़ते-चढ़ते सारी व्यवस्था पूर्ण हो गयी है। अब इधर रेवती नक्षत्र भी प्रारम्भ हो चुका। शुभ योग भी आ गया है। आज चन्द्र तो मीन लग्नमें अवस्थित हैं ही। ब्राह्मण भी कदलीमण्डपमें पधार गये हैं। अतः अविलम्ब क्रिया आरम्भ हो जाती है।

शास्त्रविधिका अनुसरण करते हुए व्रजेन्द्र, व्रजरानी दोनों ही पुनः मङ्गल-स्नान करते हैं। स्वयं निवृत्त होकर फिर व्रजेश्वरी श्रीकृष्णचन्द्रको स्नान कराती हैं। पश्चात् पूर्वाभिमुख होकर आसनपर नन्ददम्पति विराजते हैं। उस समय व्रजरानीकी गोदमें श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर व्रजेन्द्र कुछ क्षणके लिये तो सब कुछ भूल जाते हैं। याजक भूदेवोंकी भी यही दशा होती है। मङ्गल गान करती हुई व्रजाङ्गनाएँ भी श्रीकृष्णचन्द्रकी वह दिव्य छबि देखकर विमुग्ध हो जाती हैं। ब्राह्मण कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर आचमन, स्वस्तिवाचन, दीपप्रज्वालन, अर्घ्यस्थापन आदि सम्पन्न कराते हैं; पर उनकी मुद्रा ऐसी हो गयी है मानो किसी गाढ़ समाधिसे अभी-अभी उठे हों। व्रजेन्द्र भी नान्दीश्राद्ध आदि सभी कर्मोंका समाधान करते जा रहे हैं—किंतु इस तरह, जैसे उनके हाथोंसे कोई अचिन्त्य शक्ति क्रिया करवा दे रही हो, स्वयं वे इस शरीरसे कहीं अलग चले गये हों।

शास्त्रीय कर्मकाण्ड पूरा होते ही एक साथ दुन्दुभि, डक्का, पटह, मृदङ्ग, मुरज, आनक, वंशी, संनहनी, कांस्य आदि वाद्य बजने लगते हैं। उमंगमें भरे वन्दीजन वाद्य-स्वरमें अपना स्वर मिलाकर गाने लगते हैं। व्रजाङ्गनाएँ तो सुमधुर कण्ठसे पहलेसे ही गा रही हैं। इनके अतिरिक्त इसी समय आकाशपथमें विद्याधरियाँ नृत्य करने लगती हैं और गन्धर्व गान करने लगते हैं। विशुद्ध-प्रेमरस-भावितचित्त व्रजवासी आश्चर्यसे आकाशकी ओर देखते हैं, नृत्य-गानका अनुभव करते हैं, पर किसीको देख नहीं पाते। वे सोचते हैं—सम्भव है, हमारे ही नृत्यगानकी प्रतिध्वनि हो अथवा अभी-अभी व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशनसंस्कार-सम्बन्धी दी हुई आहुतिको ग्रहण करनेके लिये अन्तरिक्षमें जो देववृन्द पधारे थे, उन्हींका नर्तन-गायन हो। अस्तु,

अब तुमुल आनन्द-कोलाहलसे पुलकित होते हुए व्रजेन्द्र अपने पुत्रके अधरसे अन्नका स्पर्श कराते हैं—

धरी जानि सुत-मुख जुठरावन नँद बैठे लै गोद।
महर बोलि, बैठारि मंडली, आनँद करत बिनोद॥
कनक-थार भरि खीर धरी लै, तापर घृत-मधु नाइ।
नँद लै-लै हरि मुख जुठरावत, नारि उठीं सब गाइ॥
षटरस के परकार जहाँ लगि, लै लै अधर छुवावत।
बिस्वंभर जगदीस जगत-गुरु, परसत मुख करुआवत॥

जिस समय व्रजेन्द्र तीक्ष्ण, कटु, अम्ल, लवण रसोंका कृष्णचन्द्रके अधरोंसे स्पर्श कराते हैं, उस समय वे अभिनव बाल्यमाधुरीका प्रकाश करते हुए अपने होठ सिकोड़ने लगते हैं। ओह! जो अपने एक क्षुद्र अंशमें स्थित अनन्त ब्रह्माण्डको क्षणभरमें चूर्ण-विचूर्णकर विलीन कर लेते हैं, ऐसे अनन्त महाप्रलय, महाभोजनके समय भी जिनमें विकृति नहीं आती, उनका कणिकामात्र तीक्ष्ण, कटु आदि रसोंसे मुख करुआना—मुख विकृत करना कितना आश्चर्यमय है, यह कितना मोहक लीलाविलास है!

व्रजेन्द्रको भी ऐसा प्रतीत हुआ कि ऐसे सुकोमलतम पाटलदलसदृश अधरोंपर तीक्ष्ण, कटु रस रखना अत्याचार है, महान् क्रूरता, अत्यन्त नृशंसता है। इसलिये उन्होंने अतिशय शीघ्रतासे जल लेकर श्रीकृष्णके अधरोंको पोंछ दिया, पोंछकर व्रजरानीकी गोदमें उन्हें रख दिया।

तनक-तनक जल अधर पाँछि कै, जसुमति पै पहुँचाए।

व्रजरानी गोदमें लेकर चाहती हैं कि इसे छोड़ूँ ही नहीं, हृदयसे लगाये ही रहूँ। पर अन्य व्रजाङ्गनाओंकी व्याकुलता देखकर वे द्रवित हो जाती हैं। पासमें खड़ी, यशोदानन्दनको हृदयपर धारण करनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित एक गोपीकी गोदमें वे पुत्रको रख देती हैं। फिर तो क्रमशः गोदमें ले-लेकर मुख चूम-चूमकर गोपसुन्दरियाँ कृतार्थ हो जाती हैं—

हरषवंत जुबतीं सब लै-लै, मुख चूमतिं उर लाएँ।

इन सब कार्योंसे निवृत्त होकर व्रजेन्द्र अगणित ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं। दक्षिणाका तो कहना ही क्या है। इतनी प्रचुर दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मणको मिली है कि वे ढो नहीं सकते। इनके अतिरिक्त कितना दान हुआ, इसकी इयत्ता करना सम्भव नहीं। वे सब अन्नादिके पर्वत भी वितरण कर दिये गये। दधि-दुग्धकी नदियोंके लिये तो कोई प्रतिबन्ध ही नहीं है।

जो चाहे, जितना चाहे, उसमेंसे ले सकता है। बहुतोंने लिये भी, पर वह तो नदी है, चतुर्थांश भी रिक्त न हो सकी। इसलिये वह आनन्दोन्मत्त हुए गोपोंकी, गोपबालकोंकी क्रीड़ास्थली बन गयी। उसमें कूद-कूदकर वे स्नान करने लगे। व्रजेन्द्रने सोच-समझकर ही इनका निर्माण कराया था। व्रजेन्द्रनन्दनके जन्मोत्सवके उपलक्षमें दूध-दही बिखेरकर गोपोंने दधि-दुग्धकी धारा बहा दी थी, गर्त बना दिये थे। आज व्रजेन्द्रने उनका आनन्द-वर्द्धन करनेके लिये अपनी ओरसे दधि-दुग्ध आदिकी नदियाँ बहा दीं।

ब्राह्मण-भोजन, अतिथिसत्कार समाप्त कर गोपकुलके साथ व्रजेन्द्र भोजन करने बैठते हैं—

यहर गोप सब ही मिलि बैठे, पनवारे परसाए।
भोजन करत अधिक रुचि उपजी, जो जाकें मन भाए॥

व्रजेन्द्र भोजन करके उठे ही थे कि कुछ गोपबालकोंने आकर कहा—'बाबा! हमलोग तो यहाँ थे, उत्सवमें विभोर थे, पीछेसे किसीने आकाशसे समस्त गोकुलमें स्वर्णकी वृष्टि की है।' वास्तवमें ही वृष्टि हुई थी। कुबेर दर्शनकर कृतार्थ होनेकी आशासे श्रीकृष्णचन्द्रका अन्न-प्राशन देखने आये थे। मनमें आया—अपने स्वामी व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको मैं क्या भेंट चढ़ाऊँ? मेरे पास है ही क्या? सब वस्तु तो उनकी ही है, पर उनकी वस्तु ही उन्हें अर्पण कर देनेपर वे प्रसन्न हो जाते हैं; फिर संकोच क्या है। लो नाथ! मेरा यह क्षुद्र उपहार तुम्हारी प्रीतिका कारण हो। यह सोचकर कुबेरने तीन मुहूर्ततक स्वर्ण-वृष्टि करके गोकुलको परिपूर्ण कर दिया था—

त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा।
चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णं च गोकुलम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृष्णखण्ड, अ० १३)

गोप इस स्वर्ण-वृष्टिसे चकित अवश्य हुए, पर यह उनके आदरकी वस्तु नहीं बन सकी। कैसे बने? जिन व्रजवासियोंके सामने व्रजेन्द्रनन्दन हैं, उनके लिये इस तुच्छातितुच्छ स्वर्णराशिका मूल्य ही क्या है? ऐश्वर्यज्ञानविहीन विशुद्ध प्रेमके आस्वादनमें ये व्रजगोप, गोपसुन्दरियाँ तो तन्मय हैं। उनके लिये, व्रजेन्द्रनन्दन तत्त्वतः क्या हैं, इसके अनुसंधानकी आवश्यकता नहीं। पर वस्तुस्थिति तो अनुसंधानकी अपेक्षा नहीं रखती। वह तो जो है, वह रहेगी ही। ये व्रजेन्द्रनन्दन ही तो आत्माके आत्मा हैं, प्रियोंके भी प्रियतम हैं; इन्हींके लिये देहादि भी प्रिय हैं, इनसे प्रेम करनेमें ही जीवनकी परम सार्थकता है—शेषशायी पुरुषके रूपमें व्रजेन्द्रनन्दनने ही तो यह कहा है—

अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि।
अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर्मत्कृते प्रियः॥

(श्रीमद्भा० ३। ९। ४२)

ऐसे इन स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनको पाकर इनके प्रति अपना मन:प्राण न्योछावर कर देनेवाले व्रजपुरवासियोंके लिये तो कुबेरका वैभव अत्यन्त नगण्य है। वे, भला, इस तुच्छ वस्तुको क्या आदर दें?

इस तरह व्रजेन्द्रनन्दनका अन्नप्राशन-संस्कार समाप्त हुआ। उस दिनकी संध्या आयी, रात्रि आयी, फिर नूतन प्रभात आया। जननी यशोदा एवं व्रजवासियोंके लिये ये आठ पहर क्षणके समान बीत गये। जननी तो आठों पहर श्रीकृष्णचन्द्रका मुख ही देखती रही हैं। एक दिनसे नहीं, पाँच महीने इक्कीस दिन हो गये हैं। इतने दिनसे वे निरन्तर पुत्रकी छबि देखती आयी हैं और बलिहार जाती रही हैं—

जननी देखि छबि, बलि जाति।
जैसैं निधनी धनहि पाऐं, हरष दिन अरु राति॥
बाल-लीला निरखि हरषति, धन्य-धनि ब्रजनारि।
निरखि जननी-बदन किलकत, त्रिदस-पति दै तारि॥
धन्य नँद, धनि-धन्य गोपी, धन्य ब्रज कौ बास।
धन्य धरनी करन पावन जन्म सूरजदास॥

व्रजमें क्रमशः छहों ऋतुओंका आगमन और श्रीकृष्णकी वर्षगाँठ

व्रजपुरको अलङ्कृत करने वर्षा-ऋतु आयी हुई थी। वह श्यामघटाका विस्तार करके रिमझिम्-रिमझिम् करती हुई बूँदोंके रूपमें नन्दप्राङ्गणमें झरा करती। एक दिन झरते समय हठात् उसने यशोदाके क्रोडमें अवस्थित श्यामवर्ण नवजात नन्दनन्दनको देखा। देखते ही मानो उसे प्रतीत हुआ—मेरे निर्मापसे पूर्व किसी विश्वातीत विचित्र स्रष्टाने इस श्यामशिशुका निर्माण किया था, निर्माणके पश्चात् उसने अपने श्याम-रङ्ग-रञ्जित हाथोंको सागरमें धोया था, वह हस्त-प्रक्षालित श्यामवारि जमकर घन हो गया, उसीको उपादान बनाकर विधाताने मेरे नवजलधा-रूपमें व्यक्त होनेवाले अङ्गोंकी रचना की थी। आज वर्षाको नन्दनन्दनका रूप देखकर अपने रूपके उद्गमका ज्ञान हुआ। इतना सुन्दर मूल देखकर वह फूली न समाती थी। अतृप्त नयनोंसे वह नन्दनन्दनका सौन्दर्य निहारती हुई व्रजके आकाशमें नाच रही थी। नाचते-नाचते मनमें आया—एक बार सर्वथा नन्दनन्दनमें मिल जाऊँ, निकटतम स्पर्श पाकर कृतार्थ हो जाऊँ, साथ ही इनकी श्यामताकी एक पुट मेरे अङ्गोंपर और लग जाय, कदाचित् नन्दनन्दनके अतुल श्यामल अङ्गोंकी यत्किञ्चित् तुलनाकी सामग्री मेरे अङ्ग भी बन जायँ। वर्षाने मानो इसी उद्देश्यसे अपने अङ्गों (मेघ)-को समेटा तथा देखते-ही-देखते वह इस बार— आकाशमें नहीं— व्रजेन्द्रनन्दनके श्याम अङ्गोंमें विलीन हो गयी।

इसके पश्चात् शरत्-सुन्दरी आयी। राशि-राशि विकसित पद्मोंकी ओटसे झाँक-झाँककर मानो वह देख रही थी कि इस बार व्रजपुर कैसा सजा। नन्दप्रासादके दक्षिण पार्श्ववर्ती सुरम्य सरोवरके प्रस्फुटित कमलोंमें छिपकर बैठी हुई वह एक दिन नन्दभवनकी शोभा परख रही थी। हठात् प्रिय पुत्रको गोदमें लिये व्रजरानी गवाक्षरन्ध्रोंके समीप आ गयीं तथा शरत्-सुन्दरीने नन्दनन्दनको देख लिया। उसने मानो अनुभव किया—ओह! नन्दनन्दनका मुख तो एक पूर्ण प्रस्फुटित अरविन्द है, दोनों नेत्र दो उत्फुल्ल कमल हैं, दोनों हाथ विकासोन्मुख दो अम्बुजकोरक हैं; नाभि? नाभि नहीं है, यह तो एक अरुणाम्भोजकोष (लाल कमलकी कली) है तथा ये दोनों चरण तो पूर्ण विकसित पङ्कज हैं। इन अष्टकमलोंकी शोभा भी विलक्षण ही थी। स्वप्नमें भी शरद्ने अबतक ऐसे सुन्दर कमलकी कल्पना नहीं की थी। उसने अपने अञ्चलमें भरे हुए अनन्त पद्मोंका सौन्दर्य एकत्रित किया तथा इस ढेरमें अपने कोषकी समस्त संचित श्री मिला दी। फिर भी देखा—इन आठमेंसे एक कमलके कणमात्र सौन्दर्यकी भी तुलना इस ढेरसे असम्भव है। स्तब्ध होकर वह नन्दनन्दनकी ओर देखने लगी। अवधि आनेतक वह अपलक नेत्रोंसे नन्दनन्दनको ही निहारती रही। जब जाने लगी, तब उनके प्रति प्रबल आकर्षणवश सारी शोभा बटोरकर उसे हृदयमें छिपाये इस बार वह भी मानो नीले निर्मल आकाशमें नहीं, बल्कि नन्दनन्दनके नेत्रकमलोंमें जा मिली।

अब हिमाचलकी ओरसे हेमन्त आया। धूएँका वितान तानकर वह व्रजपुरमें निवास करने लगा।* उसका आगमन देखकर कहीं मेरे नीलमणिको हेमन्तकी दृष्टि न लग जाय, मेरा बालक रुग्ण न हो जाय, इस भयसे जननी यशोदा प्रायः नीलमणिको वस्त्रोंमें छिपाये रहतीं। दिनमें जब सूर्य ऊपर उठ आते तो उस समय मैया उनके अङ्गोंपरसे वस्त्र हटातीं, अङ्गोंमें तेल लगाकर उष्णवारिसे प्रक्षालित कर उन्हें पोंछतीं। इसी समय एक दिन दूर खड़े हुए हेमन्तने अपनी शीतल आँखोंसे नन्दनन्दनके दर्शन किये। जबतक सूर्य अस्ताचलगामी न हुए, तबतक वह खड़ा-खड़ा देखता रहा। पर सूर्यके छिपते ही जननीने भी नीलमणिको अपने आँचलमें छिपा लिया। इस अदर्शन-दुःखसे ही मानो हेमन्त सारी रात रोता रहा; प्रातःकाल राशि-राशि ओसकणके रूपमें हेमन्तके नेत्रोंसे झरे हुए अश्रुबिन्दु सर्वत्र बिखरे दिखायी दिये। दो मास वह रहा। इतने समय दिनमें नन्दनन्दनकी झाँकी पाकर

* हेमन्त ऋतुमें सर्वत्र, विशेषतः जलाशयोंके समीप प्रायः धुआँ-सा छाया रहता है।

अतिशय प्रफुल्लित रहता, पर रात्रिमें खिन्न हो जाता—'हाय! मैं इतना शीतल क्यों हुआ, मेरी शीतलताके भयसे ही तो मैया अपने पुत्रको छिपा लेती हैं। किंतु अकस्मात् उसे एक बार अनुभव हुआ—नन्दनन्दनके चरणतलमें एक अभिनव शीतलता भरी है; उनके चरण अत्यन्त शीतल हैं, पर अत्यन्त सुखद हैं; उनका वह शैत्य तो किसीके लिये कष्टद नहीं होता, सभी उसका अभिनन्दन करते हैं। उसने सोचा—फिर क्यों नहीं मैं भी इन चरणोंमें ही मिल जाऊँ? इनके संसर्गसे मेरी कटुता भी दूर हो जायगी, व्रजवासी फिर मुझे अतिशय प्यार करने लगेंगे।' बस, इस भावनासे ही मानो हेमन्त नन्दनन्दनके चरणोंमें लीन हो गया।

ठीक यही दशा इसका अनुसरण करनेवाले इसके बन्धु शिशिरकी भी हुई। उतने ही दिन वह भी व्रजेन्द्रपुरीमें रहा। हेमन्तकी भाँति ही वह भी दिनमें व्रजेन्द्रनन्दनको निहारकर अत्यन्त प्रसन्न होता, पर रात्रिमें खिन्न हो जाता। अन्तर इतना ही था कि कभी-कभी उसे रात्रिमें यशोदानन्दनके अदर्शनसे मानो हेमन्तकी अपेक्षा भी अत्यधिक दुःख होता था, दुःखसे उसके हृदयकी गति स्थगित हो जाती, उसका हृदय जम जाता था; शिशिरका जमा हुआ हृदय ही मानो हिमपिण्डोंके रूपमें प्रातःकाल व्रजवासियोंको दीख पड़ता था। अस्तु, अन्तमें वह भी हेमन्तकी तरह भावित होकर नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके परम शीतल शंतम चरणोंमें मिल गया।

शिशिरका अवसान होनेपर आम्रमञ्जरियोंके अन्तरालसे अपने कर-पल्लवपर कोकिल बैठाये वसन्त निकला। दुकूलसे शीतल-मन्द-सुगन्ध पवनका सञ्चार करता हुआ नन्दभवनमें जा पहुँचा। जाते ही उसने देखा—मणिमय प्राङ्गणमें श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये धात्री बैठी है। उसकी ओर मुख किये, रोहिणीनन्दन बलरामको गोदमें लिये वासन्ती परिधानसे विभूषित व्रजरानी बैठी हैं। उनकी पीठकी ओर श्रीरोहिणीजी खड़ी हैं तथा उनके पीछे गोपिकाओंका एक दल है। दूसरी ओर कुछ हटकर व्रजगोपोंके सहित व्रजेन्द्र खड़े हैं। सबकी दृष्टि श्रीकृष्णकी ओर है पर श्रीकृष्ण रामको एवं राम श्रीकृष्णको देख रहे हैं। अब धात्रीने श्रीबलरामकी ओर लक्ष्य करके कहा—"बेटा राम! कलकी तरह तू बोल दे, एक बार 'मा मा ता ता' कह दे।" राम धात्रीका आदेश पाकर मधुरस्वरमें 'मा मा ता ता' कह उठे। बस, उसी क्षण अपने समस्त अङ्गोंको कम्पित कर वेगसे किलकते हुए, करकमलोंको नचाते हुए, रामकी ओर झुककर श्रीकृष्ण भी बोल उठे—'मा मा ता ता, मा मा ता ता।' ओह! इस ध्वनिने तो आनन्दकी सरिता बहा दी; उसमें व्रजरानी, गोपिकाएँ, गोप, गोपेन्द्र—सब डूब गये—

मा मा ता ता इति वचः पठन्नन्दतनूजनुः।
आनन्दार्थंमभूत्पित्रोर्व्रजस्य निखिलस्य च॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

उसी समय 'कुहू-कुहू' करती हुई कोकिल पुकार उठी; किंतु किसीने भी यह 'कुहू-कुहू' नहीं सुना। सबके कर्णरन्ध्रोंमें गूँज रहा था—'मा मा ता ता, मा मा ता ता।' वसन्तके कानोंमें भी केवल 'मा मा ता ता' झङ्कृत हो रहा था। वसन्तने अनुभव किया—मेरे अधिकृत कोकिलकण्ठमें ऐसी मधुधारा बहानेकी शक्ति नहीं। वह यह सोच ही रहा था कि श्रीकृष्ण-अङ्गोंको छूकर आये हुए पवनने उसके नासापुटोंमें एक विलक्षण सुरभि भर दी। फिर तो वसन्त आनन्दमत्त हो गया। आनन्दमत्त हुआ वह श्रीकृष्णकी, श्रीकृष्णकी व्रजपुरीकी परिक्रमा करने लगा। यद्यपि श्रीकृष्णाङ्ग-सौरभकी तुलनामें समस्त वसन्तश्री अत्यन्त तुच्छ नगण्य बन चुकी थी, फिर भी वह (वसन्त) माधवी, बकुल आदि पुष्पोंका पराग पवनको देता एवं कह देता—ले जाओ; इन्हें श्रीकृष्णके अङ्गोंसे छुला देना, इनका अस्तित्व सफल हो जायगा। एक दिन प्रातः समीरके हाथ चम्पकपरागकी भेंट चढ़ाकर वह श्रीकृष्णको देखने गया था। उस समय उनकी एक नयी लीला उसने देखी—तुमुल हर्षध्वनिसे समग्र नन्दप्राङ्गण निनादित है, गोपिकाएँ ताली पीट रही हैं, श्रीकृष्ण किलकते हुए आँगनमें घुटुरूँ चल रहे हैं,